UGC Approved Research Journal No. 47816
पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856
डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)
Peer Reviewed Bilingual Monthly International Research Journal
प्रेषण दिनांक 30
पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 23, अंक 207
जनवरी 2021

गणतंत्र दिवस अमर रहे

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्टीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 23 अंक 207
जनवरी 2021

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	दलित साहित्य का विमर्श: प्रभाव और प्रासंगिकता	डॉ. हंसराज चौहान	04
3.	' मैं पायल' उपन्यास में किन्नर जीवन की व्यथा	डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील	08
4.	नागार्जुन के उपन्यासों में जाति विरोध	डॉ. दयानन्द बटोही	14
5.	संघर्षता, सामाजिक उत्थान की सत्य घटनाओं का सफरनामा : तत्तापानी	डॉ. धीरजभाई वणकर	16
6.	कविताएँ :- बी.एल.परमार/ डॉ.धीरज वणकर हरदान हर्ष/ डॉ. लक्ष्मी निधि ग़ज़ल :- डॉ. मधुर नज़्मी हाइकू : - डॉ. जयसिंह अलवरी		22
7.	लघुकथाएँ	किशनलाल शर्मा	25
8.	जीवन से उपजी कहानियां (पुस्तक समीक्षा)	आशीष दशोत्तर (समीक्षक)	26

UGC द्वारा मान्यता 47816 प्राप्त पत्रिका
खाते का नाम - आश्वस्त,खाते का नं.- **63040357829**
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक, शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

भारत लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। संविधान लागू होने के सात दशकों में निःसन्देह कुछ प्रगति विभिन्न क्षेत्रों में हुई है, लेकिन खुशहाली और समानता बहुत बड़ी जनसंख्या के लिये आज भी हासिल करना शेष है।

जिस संविधान में हमने ''जनता के लिये, जनता का और जनता द्वारा'' तंत्र अन्तर्भूत किया है, वह संविधान दीर्घकाल तक बना रहे, ऐसा यदि हम चाहते हैं तो हमारे सामने उपस्थित संकटों को समझने में और उनका समाधान करने में देर नहीं करनी चाहिए। देश की सेवा करने का यही मार्ग है।'' संविधा शिल्पी बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने गलत विचार धाराओं के साथ–साथ गलत संगठन को जनतंत्र की असफलता के लिये दोषी ठहराते हुए कहा था–''खराब विचारधारा से भी अधिक खराब संगठन जनतंत्र की असफलता के लिये जिम्मेदार हैं। सभी राजनीतिक समाज दो वर्गों में विभाजित हो गये हैं – शासक और शासित। यह एक बुराई है। यदि यह बुराई यहीं रुक जाए तो ज्यादा चिंता की बात नहीं, किंतु यह विभाजन रूढ़–सा हो गया है। यह इतना अधिक परत–दर–परत हो गया है कि शासक सदैव शासक वर्ग से लिये जाते हैं और शासित कभी शासक नहीं बन पाते हैं।'' संसदीय जनतंत्र अपने लोकप्रिय सरकार के साजो–सामान के बावजूद वास्तव में एक आनुवंशिक प्रजा वर्ग और आनुवंशिक राजावर्ग की सरकार है।

8 सितम्बर, 1943 के दिन दिल्ली में आयोजित श्रमिक संघों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में अध्यक्ष पद से बोलते हुए डॉ. अम्बेडकर ने संसदीय जनतंत्र के संबंध में स्पष्ट चेतावनी देते हुए कहा था–''भारत संसदीय जनतंत्र पाने के लिए संघर्ष कर रहा है। अभी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो पूरे साहस के साथ भारतीयों को यह बता सके कि संसदीय जनतंत्र से सावधान रहे। यह जितना श्रेष्ठ दिखता है उतना वास्तव में होगा नहीं।''

समता का मूल्य स्वतंत्रता के मूल्य के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। समाज के जो वर्ग सदियों तक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पराधीनता का शिकार रहे हैं, वे तब तक स्वतंत्रता का उपयोग नहीं कर सकते जब तक उनके आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन को दूर नहीं किया जाता। विषमता वाले समाज में स्वतंत्रता का अर्थ है– बहुसंख्यक लोगों पर कुछ लोगों की शाश्वत तानाशाही।

स्वाभिमान स्वतंत्रता की अनिवार्य शर्त है। समता शोषितों–दलित वर्ग को उनका स्वाभिमान लौटाने वाला मूल्य है। आधुनिक जीवन के सब से सशक्त व्याख्याकार ज्यांपाल सार्त्र ने कहा है–'अगर मनुष्य दूसरों की स्वतंत्रता का आदर नहीं करेगा, तो जो स्वतंत्रता उसे मिली है, वह तत्काल नष्ट हो जाएगी।' तात्पर्य है कि स्वतंत्रता समता पर निर्भर है। डॉ. अम्बेडकर के बाद डॉ. लोहिया ने समता के दर्शन का बहुत विश्वसनीय ढंग से प्रतिपादन किया। समान अवसरों के लिये विशेष अवसर का सिद्धांत रखकर उन्होंने अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों और महिलाओं के लिये 60 प्रतिशत आरक्षण होने की बात कही। डॉ. लोहिया का कहना था कि दलितों को पहले अवसर दो, योग्यता बाद में आ जायेगी, पहले योग्य बनकर फिर अवसर देने की बात कहना धूर्तता है, यह अवसर नहीं देने की साजिश है।

निजी स्वार्थ और दूषित राजनीति ने पवित्र जनतंत्र को विकृत कर दिया है। इस देश की राजनीति में जितनी भक्ति और नायक–पूजा है, उतनी अन्य किसी देश में नहीं है। धर्म में भक्ति मार्ग आत्मा की मुक्ति–मार्ग हो सकता है, परंतु राजनीति में भक्ति तथा नायक–पूजा अधोगति का और अन्त में अधिनायकत्व का मार्ग है, इमसें कोई सन्देह नहीं है।

भारत रत्न बौद्धिसत्व बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने हमें गणतंत्र का बहुत ही आधुनिक एवं उदार स्वरूप प्रदान किया है। सच्चे गणतंत्र का जन्म सपने के पालने में नहीं, बल्कि इतिहास की कोख से होता है। आज भारतीय गणतंत्र के समक्ष जो चुनौतियाँ उपस्थित है उनके समाधान या तर्कसंगत उत्तर किसी भी राजनीतिक विचारधारा के पास नहीं है कि देश में यह सब क्यों और कैसे हो रहा है? हम उसे किसी व्यक्ति या पार्टी की असफलता के रूप में लेते है। यह नहीं सोचते कि सामाजिक अशांति और राजनीतिक उथल–पुथल का कारण भीतर ही कहीं तो विद्यमान नहीं है ?

तो आईये 'हम भारत के लोग' गणतंत्र की जड़ों को मजबूती प्रदान करने के लिये एक सुर, एक ताल के साथ 'राष्ट्रहित सर्वोपरि' का संकल्प लें।

जय भीम। जय भारत। जय संविधान।

– डॉ. तारा परमार

दलित साहित्य का विमर्श : प्रभाव और प्रासंगिकता

– डॉ. हंसराज चौहान

भारत में दलित शब्द का उच्चारण होते ही जहाँ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अर्थात् एससी व एसटी के लोगों में अजीब सा भय और निराशा एवं अपराधबोध–सी स्थिति आने लगी है वहीं तथाकथित सवर्ण समाज (और कई बार पिछड़ा वर्ग अर्थात् ओबीसी) में इस शब्द के प्रति 'घृणा', 'तिरस्कार', 'कोप' या 'असम्मान' का भाव आता है। साहित्य में भी सामाजिक दशाओं की ही तरह दलितों के विमर्श और इस वर्ग के चिंतकों के लिए कोई 'स्वागत' नहीं रखा गया और प्रायः इस वर्ग से जुड़े लेखकों–चिंतकों को उपहास और व्यंग्यबाणों का ही सामना करना पड़ा।

अछूत की शिकायत, ठाकुर का कुआँ आदि रचनाएँ दलितों के प्रति हमारे श्रेष्ठी और तथाकथित सनातनी व साहिष्णु समाज की पोल खोल कर रख देती हैं। ज्योतिबा फुले, बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर और कांशीराम के राजनैतिक विचारों का दलितों के जीवन पर सकारात्मक सामाजिक प्रभाव पड़ता रहा और वे अपने अधिकारों के लिए लामबद्ध होकर जागृत होते गए।

प्रसिद्ध दलित चितंक डॉ. एन. सिंह दलितों की वर्तमान दशा पर लिखते है–''गाँव में दलित की स्थिति आज भी वही है। वहाँ वह आज भी सवर्णों की गुलामी ही कर रहा है। उसकी महिलाओं को अब भी गाँव में नंगा करके घुमाया जाता है। दूल्हे को घोड़ी पर चढ़ा देखकर, दौड़ाकर पीटा जाता है। नाराणपुरे, देवली और पारसबीघा जैसे कांड आज भी दोहराए जाते हैं।''[1]

इस प्रकार के हालात देखकर–भोगकर यदि कोई दलित या दलित वर्ग का समर्थक इस वर्ग के जीवन और सम्मान की बेहतरी के लिए आवाज उठाता है, अभिव्यक्ति रखता है, तो उसके परम्परागत साहित्य के क्षेत्र मे समर्थन और सहयोग की अपेक्षा महसूस होती है किंतु प्रायः होता इसके उलट ही है। उसे वैचारिक और बौद्धिक स्तर पर ठेला, धकियाया और तिरस्कृत किया जाता है उसका आत्मबल तोड़ने के प्रयास होते है।

प्रो. डॉ. ए. अच्युतन ने अपने आलेख ''मलयालम दलित साहित्य और न्याय'' में लिखा है– ''भारत में सामाजिक न्याय के हनन की मूल जड़े इस देश की सामाजिक–आर्थिक संरचना और सांस्कृतिक मान्यताओं में ढूंढ़ी जा सकती है सामाजिक संरचना जन्म से ही लोगों का दर्जा या कर्त्तव्य तय कर देती है। जाति के आधार पर ऊँच–नीच की मान्यता, छुआछूत जैसे असमानता एवं मानव अधिकारों के उल्लंघन का कारण बन जाता है। सामूहिक बलात्कार, उत्पीड़न जैसी घटनाओं के शिकार ज्यादातर दलित या पिछड़ी जातियाँ, अल्पसंख्यक समुदाय के लोग होते है।''[2]

तमाम तरह की बाधाओं, अस्वीकृतियों और नकारात्मक अलोचनाओं के बावजूद दलित साहित्य का आंदोलन मजबूत होता गया है और ये केवल उत्तर भारत तक ही सीमित नहीं रहा है बल्कि समूचे देश में इसका व्यापक स्तर पर, गहरे तौर पर प्रभाव होता गया है।

दलितों पर अत्याचार के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि कारण हो सकते है लेकिन जो सबसे बड़ा कारण है वो मनोवैज्ञानिक कारण। वास्तव में समाज में ये मान लिया गया है कि दलित वर्ग हिकारत और गैर बराबरी के योग्य है और इसका उद्धार किया जाना नकारात्मक परिणाम पैदा कर सकता है। दलित चिंतक और साहित्यकार इसी प्रकार की सोच को गलत साबित करने में लगे है और निरंतर प्रयासों से किसी स्तर तक इसका सकारात्मक परिणाम भी सामने आने लगा है।

ओमप्रकाश वाल्मीकी, रत्नकुमार सांभरिया, डॉ. धर्मवीर, डॉ. सुशीला टाकभौरे, मोहनदास नैमिषराय,

कंवल भारती आदि स्थापित दलित साहित्यकारों के अलावा डॉ. रजत रानी मीनू, मधुकान्त कल्पित, डॉ. रमेशचन्द मीणा, डॉ. मूलचन्द गौतम, डॉ. अनामिका, मूलचन्द सोनकर, डॉ. यशवंत वीरोदय, डॉ. दिनेश राम, जसराम हरनोटिया, पी.सी. वैरवा, हीरा लाल नागर आदि ऐसे नाम है जो दलित साहित्य के क्षेत्र में बेहतर और प्रभावी लेखन कर रहे है। ये साहित्यकार प्रायः अपने अनुभवों और चिंतन से इस तर्क को मजबूत करते चले है कि दलितों को उनकी आबादी और योग्यता के अनुसार अवसर तथा हिस्सा नहीं मिल पाया है और तुंरत प्रभाव से दलितों को उनके अधिकार ससम्मान दिलाये जाने चाहिए।

प्रसिद्ध दलित चिंतक डॉ. माताप्रसाद ने अपने आलेख 'दिग्विजयी रावण' में स्पष्ट लिखा है कि–''इस देश की हिन्दू समाज व्यवस्था का शिकार निम्न वर्ग के लोग हुए हैं। दलित वर्ग का बुद्धिजीवी इस तथ्य को शिद्दत के साथ महसूस कर रहा है। इस व्यवस्था को शीघ्र समाप्त नहीं किया गया तो भारत का टूटकर बिखर जाना या फिर से गुलाम हो जाना नितांत अवश्यसंभावी है'' ।[3]

वास्तव में दलितों को हर क्षेत्र में अवहेलना और अपमान झेलना पड़ा है और उसके प्रतिकार में बौद्धिकता के जरिये तर्कपूर्ण व तार्किक ढंग से अपने वर्ग की बात रखने का कार्य दलित साहित्यकार कर रहे है। उनके तर्कों और विवरणो में भारतवर्ष का इतिहास भी शामिल है जो उन साहित्यकारों को पैनी धार देता है जिससे आग उगलते सत्य को दुनिया के सामने रखा जाकर अपने अधिकारों को धमक के साथ हासिल करने का प्रखर भाव अभिव्यक्त होता है।

हिन्दी के नामी–गिरामी साहित्यकार भी दलित साहित्य का नाम सुनते ही नाक–भौं सिकोड़ने लगते हैं। आश्चर्य है कि सामाजिक समानता और शोषितों के समर्थन की बात करने वाले चिंतक या साहित्यकार केवल 'दलित' विशेषण देखते ही अपनी युगीन पूर्वाग्रही खाज़ को सामने ले आते है। प्रसिद्ध आलोचक बच्चनसिंह भी कदाचित अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो सके है और लिख बैठे हैं कि ''दलित साहित्य के लेखकों में अभी न तो बौद्धिक ऊँचाई आ पाई है और न संयम, न रचनात्मक सोच। हिन्दी पट्टी के दलित लेखकों और उनसे ज्यादा उनके गैर दलित–पैरवीकारों ने ब्राह्मणों द्वारा लिखा गया सब कुछ जला देने की खोखली आवाज उठाई है।''[4]

इस तरह की पूर्वाग्रही सोच के साथ दलित साहित्य की नकारात्मक आलोचना करना वास्तव में आलोचना के सिद्धान्तों को ही तिलांजलि दे देना है।... आलोचना सम्यक और गुणदोष की परखपूर्ण होती है न कि एकपक्षीय और एकाक्षी.....। दलित साहित्य का सृजन होते इतना लम्बा समय हो गया किंतु उसे स्वीकृति और तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य में स्थापित होने के लिए आज भी इंतजार करना पड़ रहा है तो ये हमारी विषमताकारी और द्वैषभाव की सोच एवं दोगले व्यवहार की कलई खोलने वाला प्रमाण ही है।

हालांकि कुछ सवर्ण साहित्यकार और चिंतक अवश्य दलित वर्ग की पीड़ा को समझ सके है और समर्थन का भाव रखते है किंतु बड़े स्तर पर आज भी गैर दलितों के सहयोग और समर्थन की आवश्यकता दलित साहित्य में अपेक्षित है। डॉ. अमरनाथ ने दलित साहित्य का विवेचन करते हुए लिखा है–''अपने जीवन–संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है''[5]

वस्तुतः दलित विमर्श उन तमाम तरह के परंपरागत या नये–पुराने विमर्शों का प्रश्न खड़े करता है जो मानवीयता और लोक कल्याण की दुहाई देते फिर रहे हैं। दलितों को बेचारा, असहाय और त्याज्य–सा मानकर उन पर वैचारिक परोपकार–सा करने की साहित्यिक मानसिकता बड़े स्तर पर रही है और दलित विमर्श इस तरह की दया या उपकार अथवा एहसान से बाहर निकलकर आत्म सम्मान और स्वाभिमान के साथ खुद का वजूद मजबूत करने का, दलितों के अस्तित्व, उपयोगिता, प्रासंगिकता और कर्मण्यता को दर्शाने वाला

उसे दर्ज कराने वाला विमर्श माना जा सकता है।

दलित विमर्श सुदामा पांडेय धूमिल की कविताओं जैसा खुला और प्रखर तथा कठोर–कड़ुवा माना जा सकता है लेकिन उसमें दिनकर के प्रगतिवाद का वर्गवादी मोड़ भी दिखाई दे जाएगा..... बाबा नागार्जुन की यथार्थ अभिव्यक्ति का असर भी नजर आएगा....हाँ किसी मोर्चे पर वो हरिवंशराय बच्चन या कुमार विश्वास जैसे कवियों की मादक अभिव्यक्ति जैसा ना दिखाई दे तो इसका स्पष्ट कारण है कि ये दबाये–सताये और अपमानित तथा अस्वीकृत किये गये लोगों का साहित्य है सो इस साहित्य में मादक या अलंकारिक अभिव्यक्ति या दलित शैली ढूंढना निरर्थक ही रहेगा।

'यह तुम्हारा समय है मेरा नहीं' (राजेन्द्र यादव से अमरेन्द्र यादव की बातचीत) साक्षात्कार में राजेन्द्र यादव ने परम्परागत साहित्य और दलित साहित्य जैसी साहित्यिक धाराओं पर तुलनात्मक टिप्पणी करते हुए कहा है–''हम लोग मुख्यधारा के साहित्य के अंदर ही अपनी अस्मिता के लिए लड़ रहे थे, लेकिन अब तुम कर रहे हो तो तुम इस पर लिखो' मैं नए विचारों को सामने लाना चाहता हूँ। तुम्हें जो भी सहयोग चाहिए, हम करेंगे।''[6]

इस तरह के खुले सहयोग की उम्मीद खुले और स्पष्ट विचारों के बुद्धिजीवियों से ही की जा सकती है। जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में डॉ. राममनोहर लोहिया ने दलित वर्ग का खुला समर्थन किया था वैसे ही साहित्य के क्षेत्र में राजेन्द्र यादव जैसे अन्य लोग भी दलितों का समर्थन करे तो दलितों को सामाजिक स्तर पर समानता के अधिक अवसर मिल सकेंगे जिससे वे तथाकथित संवर्ग वर्गों के बराबर जीवन जीने की स्थिति में आने का बेहतर प्रयास कर सकेंगे। डॉ. लोहिया ने समाजवाद संबंधी जो विचार प्रस्तुत किये वे दलित चिंतकों और दलित साहित्यकारों के लिए उपयोगी माने जा सकते है। डॉ. राममनोहर लोहिया ने लिखा है सच्चे समाजवादी का प्रथम और ठोस कर्त्तव्य यह है कि वह अपने समाज की वर्ग–व्यवस्था के बुनियादी चरित्र व विशेषताओं का सजग होकर अध्ययन करें।..... भारत के बुनियादी किस्म के विशेषाधिकार तीन है–जाति, सम्पति और भाषा।''[7]

बिना किसी विशेष समर्थन के भी यदि दलित साहित्य अपनी उपयोगिता और प्रासंगिकता सिद्ध कर पाया है तो राजेन्द्र यादव, डॉ. अमरनाथ और कुछ अन्य बुद्धिजीवियों के आंशिक समर्थन से उसे कितनी ताकत मिल सकती है ये गौरतलब है।

दलित साहित्य साहित्य के सिद्धान्तों, मूल्यों और जिम्मेदारियों का बखूबी निर्वाह व पालना करने वाला साहित्य है..... हाँ ये स्थापित साहित्यिक मान्यताओं और पूर्वाग्रही वैचारिक खाँचों या साँचों में 'फिट' नहीं हो पाता सो आलोचनाओं–विशेषकर कटु आलोचनाओं का केन्द्र बनता रहा है।... इस साहित्यिक विचारधारा का भाव–पक्ष हो या कला पक्ष हो... हर जगह मजबूती और उत्कृष्ट वैचारिक नजर आएगी किंतु इसमें सुलगता और कठोर यथार्थ देखकर आलोचक इसे खारिज करने पर आमादा हो उठते हैं।..... कभी–कभी तो दलित साहित्य को तिरस्कार और उपेक्षा के हथियार से ही खारिज करने के प्रयास किये जाते है।, जैसे डॉ. सियाराम तिवारी के संपादन में प्रकाशित भरतीय साहित्य की पहचान में 'दलित साहित्य' का जिक्र तक ना होना हैरान कर देता है.... और इस बात की पुष्टि करता है कि स्थापित और परंपरागत साहित्य में दलित विमर्श को स्वर देना उचित या उपयोगी नहीं माना जाता है।.... बुद्धिजीवी वर्ग में यह सर्वज्ञात तथ्य है कि दलित साहित्य का मूल मराठी दलित साहित्य में है और इस विमर्श का उभार तथा प्रेरणा भी वहीं से आई है लेकिन भारत वर्ष में किसी क्षेत्र या प्रदेश अथवा भाषा विशेष के विमर्श का हिन्दी पर प्रभाव पड़ने की साहित्यिक पड़ताल करने वाले आलोचक बड़ी सफाई से हिन्दी दलित साहित्य पर मराठी दलित साहित्य के प्रभाव को चालाकी से विस्तृत कर देते है भारतीय साहित्य की पहचान में अंकित ये टिप्पणी इस बात को साबित करती है कि दलित विमर्श और तत्संबंधी साहित्य की कितनी उपेक्षा और अवहेलना होती रही है–''एक भारतीय भाषा के साहित्यकार द्वारा अन्य भारतीय भाषा के साहित्यकार से प्रेरणा और प्रभाव

ग्रहण करने के उदाहरण भी भारतीय साहित्य में प्राप्त होते है।''[8] इस टिप्पणी के पश्चात् जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये है उनमें दलित साहित्य का कहीं भी जिक्र तक ना होना अभिजात्य साहित्यकारों की उस मनोवृति को दर्शाता है जो सामाजिक और साहित्यिक दशाओं में आंतरिक रूप से अपने चिंतन मे कदाचित किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं कर पाया है।

ज्योतिबा फूले ने 19वीं सदी के उतरार्द्ध में भारतवर्ष के सामाजिक ढांचे में दलितों की स्थिति पर जो यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया था कमोबेश उसका बड़ा रूप आज भी जस का तस विद्यमान है और समाज अपने सहिष्णु व समन्वयकारी होने का ढ़ोल बेशर्मी और बेहूदगी से पीटे ही जा रहा है जबकि दलित बच्चियों और औरतों का बलात्कार हो रहा है। दलितों को हक मांगने या हासिल करने के प्रयासों पर बुरी तरह मारा–पीटा जा रहा है। उन्हें केवल 'आरक्षण का जीव' मानकर उनका घोर अपमान किया जा रहा है और इतना ही नहीं हालात की साहित्यिक रिपोर्टिंग करने वाले दलित चिंतक या साहित्यकार को किसी अनाम और फ्रीलांस पत्रिका की हैसियत–सा घोषित कर उसे नियोजित तरीके से उपेक्षित कर दिया जाता है धकियाकर वैचारिक तौर पर ठेल दिया जाता है।

वस्तुतः माहौल ऐसा बना दिया गया है कि दलित साहित्य को मुख्यधारा के साहित्य से अलग और अनपेक्षित सा बताया जाता रहा और केवल वर्गवादी व पूर्वाग्राही साहित्य घोषित कर उससे प्राप्त होने वाले निष्कर्षों को सीमित या क्षय स्थिति का किया जा सके।... बात साफ है कि जो लोग सदियों से हर क्षेत्र में दबदबा काबिज किये बैठे है और उसी दबदबे से उन्हें आर्थिक–सामाजिक फायदे होते रहे है वे कभी नहीं चाहेंगे कि किसी भी तरीके से रेस से बाहर रहा वर्ग उनके क्षेत्र में आकर उन्हें चुनौती दे और फायदे में हिस्सेदारी हासिल करें।

साहित्य का मामला हो या समाज का अथवा संस्कृति या धर्म का मोटे तौर पर सभी क्षेत्रों में नियंत्रण से आर्थिक लाभ ही अंतिम सत्य सिद्ध होता है और जब दलित वर्ग इस सत्य से रूबरू हुआ तो अभिजात्य मानी जाने वाली चेतना धमक उठी... उनका मिथकीय संसार डांवाडोल होने लगा।

दलित वर्ग का साहित्य या विमर्श केवल फूले या अंबेडकर के विचारों से ही पोषण नहीं लेता रहा है बल्कि इस पर अन्य विचारधाराओं और वादों का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। विभांशु दिव्याल अपने आलेख 'दलित की रोटी' में लिखते है'–''हमें यह तथ्य नकारना नहीं चाहिए कि भारत का समग्र दलित वर्ग कभी भी पूरी तरह डॉ. अंबेडकर के प्रभाव में नहीं आया और वह समाजवादी, वामपंथी तथा गांधीवादी चेतनाओं से भी प्रभावित हुआ और आज तक है।''[9]

दलित साहित्य का साहित्कार व चिंतक अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी समझता है और उसका स्पष्ट लक्ष्य है कि दलित वर्ग को उसका अधिकार मिले, समानता और सम्मान मिले, उसका बौद्धिक–भौतिक विकास संभव हो सके और यह सब तभी संभव होगा जब दलित साहित्य को बौद्धिक वैचारिक पोषण के लिए उर्वर साहित्य भूमि का विस्तार सुलभ हो सकेगा।

सहायक आचार्य, हिन्दी
राजकीय स्नात. कन्या महाविद्यालय,
होद, (खण्डेला), सीकर, (राज0)
मो. 9928440405

संदर्भः–

1. दलित साहित्य के प्रतिमान– डॉ. एन.सिंह, पृष्ठ 64, वाणी प्रकाशन।
2. समाजिक न्याय और दलित साहित्य– डॉ. श्यौराज सिंह बैचेन (संपादक), पृष्ठ 44, वाणी प्रकाशन।
3. दलित साहित्य के प्रतिमान– डॉ. एन सिंह, पृष्ठ 127, वाणी प्रकाशन।
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास– बच्चन सिंह, पृष्ठ 516, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली।
5. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली– डॉ. अमरनाथ, पृष्ठ 247, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।
6. बहुजन साहित्य की प्रस्तावना– प्रमोद रंजन, आमवन कोस्का (संपादक), पृष्ठ 45, फॉरवर्ड प्रेस प्रकाशन नई दिल्ली।
7. डॉ. राममनोहर लोहिया का समाजवादी दर्शन– ताराचन्द दीक्षित, पृष्ठ 81, लोकभारती पैपर बैक्स, इलाहाबाद।
8. भारतीय साहित्य की पहचान– डॉ. सियाराम तिवारी, पृष्ठ 18, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. दलित राजनीति की समस्याएँ– राजकिशोर (संपादक), पृष्ठ 82, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

'मैं पायल' उपन्यास में किन्नर जीवन की व्यथा

– डॉ. एकनाथ श्रीपती पाटील

'मैं पायल' महेन्द्र भीष्म का उपन्यास है, जो आत्मकथात्मक शैली में लिखा किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन–संघर्ष–त्रासदी को ध्वनित करता है। महेन्द्र भीष्म उसे जीवनपरक उपन्यास मानते हैं। 'किन्नर कथा', 'मैं पायल' जैसे उपन्यास लेखन से लेखक ने किन्नरों के जीवन में दीप जलाने का प्रयास किया है। जो उन्हें समाज की मुख्य धारा में सम्मान से जीवन निर्वाह की पहल साबित होंगी। महेन्द्र जी जैसे संवेदनशील लेखक ने अपने संवेदना चक्षुओं से ऐसे समूह के पीड़ा को उजागर किया है जिन्हें हाशिए पर ही नहीं जिनकी गिनती हम मानव श्रेणी में करते ही नहीं थे। केवल लैंगिक अंगों के कमी के कारण उन्हें क्या मानव होने से वंचित कर सकते हैं? नहीं। महेन्द्र जी अपनी संवेदनशीलता और दृढ़ता के सहारे किन्नरों पर होनेवाले अन्याय–अत्याचार का विरोध करने खड़े हुए दिखाई देते हैं। प्रस्तुत समाज परिवार–समाज से उपेक्षित–शोषित और उपहास के पात्र बने किन्नरों की वेदना, किन्नरों के प्रति देखने का दृष्टिकोण, उनका विस्थापन, विस्थापन के बाद समाज की निर्मम–निर्दयता का उन्हें हुआ साक्षात्कार, उनका अंतरद्वन्द्व, स्वस्थ समाज की तरह जीवन जीने की उनकी जीजीविषा, समाज में मिली यंत्रणाओं के बावजूद भी उनमें मानव होने की गरिमा, केवल यौनिक विकलांगता के कारण मिली उपेक्षा और उपहास को ध्यान में रखकर लेखक पायल के मुँह से प्रश्न करते हैं कि लोग अपने अपाहिज बच्चों का लालन–पालन कर उन्हें शिक्षित बनाते हैं तो किन्नर बच्चों को त्याज्य मान, उन्हें विस्थापित कर दुनिया की निर्मम क्रूरता का शिकार होने क्यों बाध्य करते हैं? आदि मुद्दों से उपन्यास की कथा का ताना–बाना बुना है।

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका पायल का जन्म उत्तर प्रदेश के बहराजमऊ गाँव में पांचवीं लड़की और वह भी हिजड़ा बच्चा होने के कारण पुत्र की आशा रखे परिवार उसका सारा दोष माँ के सर मढ़कर गालियाँ देने लगा, "मैं उनकी पांचवी संतान एक हिजड़ा बच्चे के रूप में संसार में जन्म लेते ही उन्हें तमाम दुःख, कष्ट और संताप देने के लिए आ चुकी थी।"[1] पायल के पिता ट्रक डाइवर थे जो अक्सर शराब पीकर पत्नी और पायल की बेरहमी से पिटाई करते थे। दाऊ बाबा की मृत्यु के बाद आर्थिक स्थिति डावाडोल होना, बेटे राकेश की आवारगी और पायल का हिजड़ा होने से टूट चूके रामबहादुर दिन–ब–दिन शराबी और क्रूर होते गए, 'ये जुगनी! कम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है।' हिजड़ा, करमजली, नासमीटी, हरामजादी जैसे शब्दों को पायल ने अपने बचपन में ही सुने थे जिनके अर्थों से वह अनभिज्ञ थी। पायल की माँ द्वारा कहा, 'अच्छी–खासी लड़की जैसी लगती है।' तथा बचपन की सहेली द्वारा कहा, 'जुगनी! तुम बहुत सुंदर हो, कुछ अलग किस्म की हो।' इन बातों से उसके बालसुलभ मन में प्रश्न निर्माण होता, 'लड़की ही तो हूँ मैं, तो यह लड़की जैसी क्या बला है?' 'मैं अलग कैसे हूँ?' माया एकांत में उसके जननांग को छूकर कहती, 'यहाँ से तुम कुछ–कुछ अलग हो।' यहाँ महेन्द्र जी किन्नरों के यौनिक विकलांगता के बारे में बताते हैं कि, 'किन्नर लड़की में मासिक धर्म नहीं होता, बल्कि उन दिनों में स्तन के अग्रभाग में खुजली होकर दूध निकलता है। योनी होती है जिसमें सहवास किया जा सकता है और एक स्त्री की भाँति यह भी स्खलित होती

है। केवल गर्भाशय न होने से बच्चा पैदा नहीं कर सकती और पुरुष का साथ चाहती है। इन्हें बुचरा किन्नर कहा जाता है। पायल बुचरा किन्नर है। बुचरा, नीलिमा, हंसा और मनसा ये चार किन्नरों के प्रकार है।

पायल स्कूल में होशियार तथा मॉनीटर बनने से उसमें नेतृत्व गुण विकसित हुए जो आगे किन्नर गुरु बनने और अपनी दबंग छवी निर्माण करने में सहायक हुए हैं। पायल के पिता उसे स्कूल में लड़की नहीं बल्कि लड़का बनाकर इसलिए भेजते हैं कि आगे उसके शादी का सवाल कोई नहीं उठाएगा और पायल जुगनी के बदले जुगनूसिंह बनकर स्कूल जाने लगी। होनी को कौन टाल सकता है? एक दिन पायल की बहनें उसका लड़की के रूप में श्रृंगार करती है जिसे शराबी पिता देखता है और उनके क्रोध का ठिकाना नहीं रहता। उसकी बेरहमी से पिटाई कर उसे फाँसी लगाते हैं मगर उससे वह बच जाती है। गले में फाँसी का फंदा पड़ी पायल का अपने आप से अंतरद्वन्द्व शुरू होता है। लोगों की टिका–टिप्पणी से पिता और परिवार को होनेवाली पीड़ा, उनके मान–सम्मान के बारे में सोचती है। वह स्वयं से प्रश्न करती है कि मेरे हिजड़ा होने में मेरा अपना क्या कसूर है? लोग अपने अपाहिज बच्चे पालते हैं तो फिर हिजड़ा बच्चा पालना वे अपने आन–बान–शान के खिलाफ क्यों समझते हैं? यह मानसिक बीमारी खत्म नहीं होंगी क्योंकि इसमें घर के सारे सदस्य पौरुषहिन मानने और रोटी–बेटी व्यवहार समाज द्वारा न करने का भय इसके मूल में है। लोगों की संदेहभरी नजरें, टिका–टिप्पणी आदि से बचने के लिए वे अपने हिजड़ा बच्चे को पालने में शर्म और भय महसूस करते हैं। यह हमारी शिक्षा, संस्कृति और मूल्यों की पराजय ही है, मनुष्य अपनी हिजड़ा संतान को त्याज्य मानकर उसे विस्थापित–उपेक्षित–शोषित और उपहास का जीवन जीने को बाध्य करता है। अपने कारण परिवार को दुःख भुगतने न पड़े इसलिए पायल आत्महत्या करने का निर्णय करती है लेकिन पैर में काँटा चुभने से ट्रेन निकल जाती है। वह एक ट्रेन में बैठकर दिशाहीन यात्रा के लिए निकल पड़ती है। घर से विस्थापन उसे मानव की संवेदना तथा असंवेदनशील कुरूपता का नग्न यथार्थ दिखाता है। ट्रेन तथा प्लेटफार्म पर उसका यौन शोषण का असफल प्रयास होता है। उन्नाव से वह कानपुर आती है और पेट की आग बुझाने कभी पानी पीकर कभी बासी रोटी तो कभी चाट के दोनों में बची जूठन खाकर रह जाती है। प्लेटफार्म पर उसे इस बात का अहसास हो जाता है कि लड़की के रूप में रहना असुरक्षा को निमंत्रण देना है इसलिए वह भेस परिवर्तन कर लड़का बन जाती है, "देह के नरभक्षी भेडियों की चुभती नजरों को बड़ी शिद्धत से महसूस किया होगा, जो मादा गंध के उठते ही खुंखार हो उठते हैं और मौका मिलते ही दबोच लेने के लिए उतावले बने रहते हैं।"[2]

कानपुर रेल प्लेटफार्म पर पायल अनवर की सहायता से दातून बेचने का काम करती है। अनवर उसे दातून बेचने के साथ चोरी, बीडी–सिगार पीने सांझा करना चाहता था लेकिन पायल गलत कार्य से अपनी जीविका चलाने के पक्ष में नहीं है। वह दातून बेचकर भिखारियों के साथ रहती है। यहाँ उसे भिखारियों में स्थित जो मानवता, संवेदनशीलता दिखाई दी उतनी सभ्य समाज में नहीं, "भिखारियों के बीच मैं जितने भी दिन–रात रही कभी भूखी नहीं सोई। वे भिखारी जरूर थे पर उनके अंदर मानवता थी।"[3] इसके बाद पायल होटल में बैरे का काम करके चाय–समोसा जैसी चीजें बनाना सीखती है। प्रमोद की ज्यादती के बाद वह अप्सरा टॉकीज का काम छोड़ती है। काम की तलाश करते समय वह भीख मँगवाने वाले गिरोह के हाथ लगकर उससे जबरदस्ती भीख मंगाई जाने लगी। भीख मँगवानेवाले गिरोह के अड्डे पर रेड पड़ी और सभी

बच्चों को बाल सुधारगृह में कुछ दिन रख उन्हें उनके माँ–बाप के हवाले सुपुर्द किया जाता है। पायल को लेने उसकी माँ और राकेश आए थे लेकिन राकेश उसे घर ले जाने के पक्ष में नहीं थे कारण राकेश की नजर में पायल केवल एक हिजड़ा थी। घर–परिवार से विस्थापन के लिए यहाँ वह ईश्वर को जिम्मेदार मानकर अपराध पूछती है, "हे ईश्वर! ऐसा कौन–सा पाप मैंने किया जो तूने मुझे इस जीवन में हिजड़ा रूप दिया।"[4] पायल को संतोष सिंह की सहायता से पूनम टॉकीज में काम मिलता है। पूनम टॉकीज में वह फिल्म प्रोजेक्टर चलाना सिखती है। बढ़ती उम्र और शरीर में लड़कीवाले बदलाव ने अब वह लड़की की भाँति सोचती और संवेदना महसूस करने लगती है। इसलिए वह लखनऊ आकर दूरदर्शन और आकाशवाणी में काम करना चाहती थी। सीखने की जिज्ञासा ने उसने नृत्य–गायन–मिमिक्री में महारात हासिल की। लखनऊ में कुछ किन्नर उसका अपहरण कर किन्नर गुरु मोना के डेरे पर ले आते हैं। पायल असली बुचरा किन्नर है। उसे भूखा–प्यासा रखकर, उसके स्वभाव के विपरित नाचना, गाना, ताली पीटना सिखाकर बधाई टोली के साथ इनाम–बख्शीश पान जाने के लिए बाध्य किया जाता है। पायल सोचती है, "क्या एक किन्नर को बधाई टोली के अलावा अन्य कार्य–दायित्व नहीं सौंपे जा सकते। मैं टॉकीज में प्रोजेक्टर चलाती हूँ। उसके पहले अन्य छोटे–मोटे कार्य भी मैंने किये हैं फिर मुझे क्यों बाध्य किया जा रहा है मैं इनकी तरह ताली पीटू, ढोलक बजाऊँ, नाचूँ और बधाई गाऊँ।"[5] पायल को बधाई गाते–बजाते समय लोगों से मिलनेवाली दुत्कार, परिहास व्यथित कर देती है। यहाँ उसका दम घूटने लगता है। विस्थापन के बाद अपनी जिजीविषा बनाये रखकर उसके मध्यवर्गीय संस्कार उसे भीख माँगने, हाथ फैलाने की इजाजत नहीं देते। पायल क्रूर–निर्मम दुनिया में धैर्य धारण कर अपनी अस्मिता–अस्तित्व और पहचान बनाने के लिये संघर्ष करती है। बधाई से वापस आते समय रास्ते में पप्पू गुंडा पायल को छेड़ता है। पायल को छेड़खानी पसंद न आकर वह उसे उल्टा झापड लगाती है। चोट खाया पप्पू पायल की पिटाई कर उसे निर्वस्त्र बनाता है। उसे अस्पताल में भर्ती करते हैं। अस्पताल में उसके शरीर के घाव भर जाते हैं लेकिन मन के घाव और गहरे बनते हैं। पायल को लगता है, उसे हो रही मारपीट देख तमाशबीन खड़ा ताली पीटता पुरुष वर्ग ही सच्चे अर्थों में हिजड़ा कहने का हकदार है। प्रतिशोध में जलनेवाली पायल पप्पू गुंडे और उसे जबरदस्ती हिजड़ा टोली में रखनेवाली किन्नर गुरु मोना से बदला लेने का तथा इसी हजरतगंज की किन्नर गुरु बनने और किन्नर समाज में फैली बुराईयाँ दूर करने का निश्चय करके वह कानपुर आती है।

फिर से पायल कानपुर में फिल्म प्रोजेक्टर का कार्य स्वीकारती है। प्रतिशोध में जलनेवाली पायल का मन स्त्री–सुलभ भाव–भावनाओं के कारण संजने–संवरने को तड़पने लगता है तो पप्पू गुंडे से बदला लेने छटपटाता है, "मैंने अपनी सेहत पर ध्यान देना शुरू कर दिया था। दण्ड बैठक से लेकर अपने खाना–खुराक पर ध्यानद देने लगी थी।"[6] यहाँ पायल अन्य किन्नरों से अलग किस्म की है, अपने ऊपर हुए अत्याचार को अपनी नियति मानकर चूप रहनेवाली वह नहीं है, वह उसका प्रतिरोध करने स्वयं को मजबूत बनाती है। अपने सेहत बनाने के साथ वह परिश्रम करके जीविका चलाने के लिये दृढ़ संकल्प है। बधाई टोली जाकर इनाम–बख्शिश पाना वह अपनी नियति नहीं मानती। पी.सी. विश्वकर्मा कहते हैं, "उभय लिंग अथवा थर्ड जेंडर के इस जन समुदाय ने लोगों की खुशी के अवसरों पर नाच–गा कर न्योछावर या दान तथा बसों–ट्रेनों में ताली बजाकर, लोगों को दुआएँ दे कर

पैसे माँगने जैसे भिच्छावृत्ति तुल्य साधन पर जीवन–यापन को अपनी नियति मान लिया है।"[7] पायल अन्य किन्नरों से अलग है। केवल यौनिक विकलांगता ने उसके साथ अन्याय किया है। किन्नर भी अपने हुनर से देश विकास में अपना योगदान कर सकते हैं यह बात किन्नर पायल के जीवन से साबित होती है।

तीन माह के बाद पायल लखनऊ आकर आकाशवाणी, दूरदर्शन, ऑर्केस्ट्रा में काम करके नाम, पैसा और शोहरत कमाती है। इसी बीच उसे अपने परिवार की याद सताती है लेकिन परिवार की प्रतिष्ठा और बहनों के विवाह में बाधा न बने इसलिए वह अपने को रोक लेती है। अपने प्रेमी अशोक के साथ लखनऊ घूमते वक्त उसे पप्पू गुंडा मिलता है और उसमें प्रतिशोध की भावना बलवती हो जाती है। वह अशोक की सहायता से उसकी पिटाई कर उसे नंगा बनाती है जिससे पायल की दबंग छवी निर्माण होती है। मोना किन्नर अतिरिक्त शराब सेवन से मर जाती है। अशोक के मन में पायल को लेकर संदेह निर्माण होने से उन दोनों के संबंध समाप्त हो जाते हैं। अशोक के झगड़े के बाद पायल सोनी किन्नर की सहायता से अपना ग्रुप बनाती है। उन्हें बधाई टोली से ढेर सारा रुपया मिलने लगता है। अपनी दबंग छवी बनाये रखने पायल ने स्वयं को नशा–पत्ती, लौंडा–लपाडियों से दूर रखा। कुछ दिन किन्नर गुरु माया की चेली बनी रही और फिर अपने विश्वसनीय चेलियों को लेकर किन्नर समाज की गुरुमाई बनती है। किन्नर गुरुमाई बनने के बाद भी किसी के मुँह से हिजड़ा शब्द प्रयोग सुनकर क्रोधित होती है मगर मौन–विवश रहकर सहने की नियति मान सिवाय मुस्कराने के अलावा कुछ कर नहीं पाती और एकांत में माँ–बाप को याद कर रोती है, "कल्पना करते हैं कि कितना अच्छा होता कि हमें हमारे माता–पिता दूसरे भाई–बहनों की तरह पढ़ाते–लिखाते, अच्छी परवरिश देते और पढ़–लिखकर हम उन तमाम बुराईयों से स्वयं को बचा ले जाते जो किन्नर समाज में आज बुरी तरह फैली हुई है, जिससे मुझ जैसी कोई बच नहीं पाई है।"[8] यह पायल का आत्मालाप ही है कि जिसे पढ़कर कोई माँ–बाप अपने किन्नर बच्चे को इस कुम्भीपाक से बचाये। पूरे उपन्यास में पायल एक स्वस्थ इंसान के रूप में अपना जीवन संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। सरकार तथा साहित्यकारों का भी प्रयास जारी है कि समाज उन्हें इंसान के रूप में स्वीकार करें। आनन्दप्रकाश त्रिपाठी कहते हैं, "साहित्यकारों ने हिजड़ा समुदाय के दुःख–दर्द, अपमान, उपेक्षा, शोषण और जीवन की कटु सच्चाई को बिना किसी रंग–रोगन, लाग–लपेट और काल्पनिकता के, संवेदना और करुणा के विशद पाट पर चित्रित कर उनकी व्यथा–कथा से पाठकों/समाज को परिचित ही नहीं कराया, अपितु उनके प्रतिरोध को वाणी भी दी। उन्हें उनकी अस्मिता से परिचित कराया और समाज में उनके जीने लायक सम्मान और अधिकार की बहाली का प्रश्न उठाया है।"[9]

प्रस्तुत उपन्यास के केंद्र में पायल तथा किन्नर समाज की व्यथा–कथा तथा संघर्ष के साथ किन्नरों में छिपी विकृत प्रवृत्तियाँ, स्त्री की नियति, बालकों की यौन जिज्ञासा, प्रेम का अर्थ, यौन शोषण, शिक्षा–संस्कृति–मूल्यों की निरर्थकता, सामाजिक विषमता, गरीबी, भूख, बच्चों का अपराधों में लिप्त होना, माँ की ममता आदि को चित्रित किया है। पूरे उपन्यास में पायल में स्थित सद्वृत्तियाँ तथा विसंगतियों से लड़ने की दृढ़ क्षमता का चित्रण है। इस पूरे उपन्यास में सुख–दुख की स्थितियों में पायल के साथ उसकी माँ खड़ी दिखाई देती है जो अपने सभी बच्चों पर एक–सा प्रेम करती है। पिता की बेरहमी के बावजूद भी उनके प्रति पायल के मन में कोई रोष दिखाई नहीं देता क्योंकि पिता की मजबूरियाँ वह जानती है। पूरा उपन्यास रोचक तथा जिज्ञासा बढ़ाता है

जिसे आदि से अंत तक पढ़े बगैर पाठक नहीं रह सकता। जिसमें महेन्द्र जी ने किन्नर गुरु पायल सिंह की आपबीती समाज के सम्मुख रखी है। लेखक की कहानी कहने की क्षमता और सामर्थ्य इस बात में दिखाई देता है कि पाठक के मन में सहज संवेदना और नई विचार दृष्टि का निर्माण हो जाता है।

निष्कर्ष :

कहना उचित होगा कि घर से विस्थापित होकर दुनिया की निर्मम थपेड़ों से अगर किन्नर बच्चों को बचाना है तो सबसे पहले किन्नर बच्चों के माँ–बाप, पास–पड़ोस और नाते–रिश्तेदारों का प्रबोधन करके उन्हें यह समझाना जरूरी है कि किन्नर बच्चों में केवल यौन अंगों का अविकास हुआ है जो प्रकृति प्रदत्त है और उसे आज के चिकित्सा शल्यक्रिया से उन दोषों का निराकरण हो सकता है। केवल यौनिक विकलांगता के कारण हम उनके इंसान होने के अधिकार को छीन नहीं सकते। इन बच्चों को अगर हम अपने घर में प्रेम से रख पढ़ा–लिखाकर अच्छी तालीम देंगे तो ये बच्चे भी देश के नवनिर्माण में योगदान दे सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की पायल घर से विस्थापन के बाद अपनी जीविका चलाने परिश्रम करती है, आकाशवाणी, दूरदर्शन, ऑर्केस्ट्रा में अपने अभिनय, नृत्य, मिमिक्री का हुनर दिखाकर नाम, पैसा, शोहरत कमाती है, आगे चलकर किन्नरों के हित में कार्य करने का संकल्प कर किन्नर गुरु बन जाती है। लेकिन कुछ किन्नर परंपरा से चली आयी व्यवस्था के घेरे से बाहर आना ही नहीं चाहते। ऐसे किन्नरों का प्रबोधन कर उनमें आत्मविश्वास बढ़ाना है, स्वाभिमान से मेहनत–मजदूरी–नौकरी कर पसीने की कमाई खाने के लिये प्रेरित करना है, उनका नैतिक चरित्र विकसित करना और सम्मान से जीन के लिए प्रेरित करना है। किन्नरों को गाली–गलौज, छक्का–हिजड़ा शब्दों का प्रयोग न होने के लिए स्वस्थ घर–परिवार–समाज का निर्माण करना है। किन्नरों के उन्नति के लिए सरकार तथा न्यायालय की ओर से होनेवाला प्रयास भी प्रशंसनीय दिखाई दे रहा हैं।

ग्राम–कुरुकली, तहसील–करवीर,
जिला–कोल्हापुर– 416001(महाराष्ट्र)
दूरभाष : 7758814856

संदर्भः–

1. महेन्द्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 13
2. वही, पृष्ठ 57
3. वही, पृष्ठ 63
4. वही, पृष्ठ 99
5. वही, पृष्ठ 99
6. वही, पृष्ठ 110
7. हरभजन सिंह मेहरोत्रा, ऐ जिन्दगी तुझे सलाम, (भूमिका से, अभिशप्त नहीं, सशक्त–पी.सी. विश्वकर्मा), पृष्ठ 07
8. महेन्द्र भीष्म, मैं पायल, पृ. 121
9. सं. डॉ. एम. फिरोज अहमद, वाङ्मय, (त्रैमासिक जुलाई–दिसम्बर 2017), पृष्ठ 106

नेपाली का काव्य अस्त्र

– आयु. पारस कुंज

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने चीन पर अपने काव्य–बाण से सीधा प्रहार किया था। वे आज भी प्रासंगिक हैं !

ये नेफा क्या लूटेंगे, हम तिब्बत छीन लेंगे,
जमाने से हिमालय हमारा लालकिला :
राष्ट्रकवि 'नेपाली'

राष्ट्रकवि गोपाल सिंह 'नेपाली' को 1962 ई. में चीन द्वारा भारत पर हमला किए जाने का पूर्वाभास हो गया था। उनकी पृष्ठभूमि भी इस तथ्य को पुख्ता करती है, उनके पिता रेलबहादुर सिंह, भारतीय सेना के गोरखा राइफल में हवलदार मेजर थे।

सेना में रहते हुए उनके पिता को विभिन्न स्थानों पर कार्य करने का अवसर मिला और कवि नेपाली को विभिन्न स्थानों की प्राकृतिक सुंदरता और उसकी सामरिक जानकारी के कारण ही उनकी कविता में प्राकृतिक सौन्दर्य और देशभक्ति दोनों के पुट मिलते हैं।

'नेपाली' जी 1944–45 ई. से लेकर 58–60 ई. तक बंबई (अब मुंबई) में रह कर फिल्मों के लिए गीत लिखते रहे थे।

उनसे संदर्भित विभिन्न पुस्तकों के अवलोकन और क्रमिक रूप से घटनाक्रम की तिथियों को रखने पर उक्त निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि –

सन् 1958–60 तक की उनकी रचना में प्रकृति, श्रृंगार एवं भक्ति की प्रधानता रही है। हालांकि अंग्रेजी हुकूमत द्वारा क्रांतिकारियों के बर्बर दमन की पृष्ठभूमि पर सन् 1938 में लिखी उनकी कविता (भाई बहन)– 'तू चिंगारी बनकर उड़ री, जाग जाग मैं ज्वाल बनूँ'

जैसी उत्कृष्ट देशभक्ति कविता वे पूर्व में ही लिख चुके थे। 1956 ई. में जब पड़ोसी पाकिस्तान ने अचानक भारत पर हमला कर दिया जिसमें, मेजर बधवार सहित हमारे कई सैनिक शहीद हो गये तब 'नेपाली' जी ने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु को इशारा करते लिखा था –

''ओ राही दिल्ली जाना तो
कहना अपनी सरकार से,
चरखा चलता है हाथों से
शासन चलता तलवार से !''

बंबइया फिल्मी संस्कृति में रमने के बाद जीएस 'नेपाली' की कविता में श्रृंगार और भक्ति ने स्थान जमा लिया था। किन्तु 'नेपाली' की काव्य–धारा सन् 1959 के बाद पुनः राष्ट्रभक्ति की ओर करवट लेते हुए– 'हिमालय ने पुकारा' के रूप में गर्जना करती है।

चूंकि हिमालय के उस पार से होने वाले भाईचारे के पीठ पर शत्रुता के खंजर घोंपे जाने के षड़यंत्र की अनुभूति उन्हें हो चुकी थी।

यही समय था जब राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर'–'परशुराम की प्रतीक्षा' लिख रहे थे। उनके काव्य में भी तत्कालिक घटना पर देशभक्ति का प्रस्फुटन हुआ है –

''पर्वतपति को आमूल डोलना होगा
शंकर को ध्वंसक नयन खोलना होगा,
असि पर अशोक को मुंड तोलना होगा
गौतम को जयकार बोलना होगा !''

दिनकर ने छायावाद में देशभक्ति का उद्‌गार व्यक्त किया है, परन्तु गोपाल सिंह 'नेपाली' ने तो चीन पर अपनी काव्य–बाण से सीधा प्रहार किया।

जब उन्होंने बीसवीं सदी के क्रूर, तानाशाह और विस्तारवादी माओत्से तुंग एवं चाउ एन लाई को ललकारते भारतीय सेना सहित आम जनता के अंदर राष्ट्रभक्ति को जगाया और बोमडिला चलने का आह्वान करते लिखा था –

''चलो भाई बोमडिला, चलो भाई बोमडिला
चाऊ को बोम खिला, माओ को बोम पिला
बैरी को धाम दिला, मुर्दे को नाम दिला !''

यह अति साहसपूर्ण कविता है और ऐसा साहस सैन्य पृष्ठभूमि में पले–बढ़े और देशभक्ति से ओतप्रोत, निर्भीक 'नेपाली' ही कर सकते हैं।

तभी तो 'नेपाली' को 'वन मैन आर्मी' भी कहा गया है। क्योंकि–

'सुभाष' बंदूकधारी 'नेपाली' थे
तो 'नेपाली' कलमधारी 'सुभाष'

जो काम बंदूक करती है 'नेपाली' वह काम कलम से करते थे।

'बोमडिला', अरुणाचल प्रदेश के पश्चिम कमेंग जिला में है, जिसकी चौकी को 1962 ई. की लड़ाई में चीन ने कब्जा कर लिया था। यदि चीन और आगे बढ़ता तो संपूर्ण भारत से, पूर्वांचल राज्यों को जोड़नेवाली पश्चिम बंगाल का 'चिकन नेक' कहीं जाने वाली 'संकीर्ण पट्टी' पर कब्जा करके असम सहित सभी पूर्वांचल राज्यों को अपने अधीन कर लेता। किन्तु भारतीय सेना ने 'बोमडिला' में भीषण संग्राम किया जिससे चीन को पीछे हटना पड़ा। बोमडिला चलने के आह्वान पर 'नेपाली' की उक्त कविता भारतीय सेना सहित कोटि–कोटि भारतीय जनों को आज भी उद्वेलित करती है। आज पुनः जब चीन गलवान, फिंगर प्वाइंट, डोकलाम आदि की चौकियों पर अपनी गिद्ध–दृष्टि गड़ाए हुए है, 'नेपाली' जी की यह कविता अत्यंत प्रासंगिक है। उनके ही शब्दों में–

''ये नेफा क्या लूटेंगे, हम तिब्बत छीन लेंगे
जमाने से हिमालय, हमारा लाल किला,
मरना है तो फिर आजा, जीना है तो दुम हिला
चलो भाई बोमडिला, चलो भाई बोमडिला!''

श्री पारस कुंज, अध्यक्ष :
''शब्दयात्रा गोपाल सिंह नेपाली आन्दोलन''
'सीता निकेत', जयप्रभा पथ, भागलपुर–812002 (बिहार)
व्हाट्एप : 6201334347, 9572963930

नागार्जुन के उपन्यासों में जाति विरोध

– डॉ. दयानन्द बटोही

वर्णाश्रम धर्म के अनुसार ब्राह्मण समाज में सबसे उच्च समझे जाते थे वे दया, धर्म, परोपकार आदि गुणों से सम्पन्न होते थे। लेकिन धार्मिक रूढ़ियों के विकास के साथ ही ब्राह्मणों में इन गुणों का लोप होता चला गया। धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों को इस वर्ग ने सर्वाधिक प्रश्रय किया। जिस समाज में धर्म की आड़ लेकर एक वर्ग अन्य वर्गों का शोषण करता है उसके विकास में अवरोध होना निश्चित एवं अवश्यंभावी हैं।

यद्यपि नागार्जुन का जन्म मैथिल ब्राह्मण के घर हुआ लेकिन उन्होंने मैथिल समाज के ब्राह्मणों का जो लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट है कि वह वर्ग जिसके हाथ में धर्म की बागडोर है और जो अपने को धर्म का ठेकेदार मानता है वह अत्यंत भ्रष्ट हो गया है। उपन्यासकार नागार्जुन का दृढ़ मत है कि यह वर्ग अत्यंत पतित है और अब इसके लिए धर्म, मात्र दिखावा है। इस वर्ग का धर्म स्वार्थ सिद्धि से बढ़कर और कुछ नहीं है। यह वर्ग सामाजिक विषमता एवं विकृतियों को प्रश्रय देकर अपने निहित स्वार्थों की अबाध पूर्ति में रत है।

इनके सभी उपन्यासों में जाति का विरोध साफ तौर से दिखाया गया है चाहे वह 'रतिनाथ की चाची' हो या 'नई पौध' हो। रतिनाथ की चाची के जयनाथ, भोला पंडित और कुच्चन पाठक, 'नई पौध' के रूढ़िवादी ब्राह्मण समाज के कतिपय प्रतिनिधि पात्र है। रतिनाथ की चाची का कुल्ली राउत निम्न जाति का है। वह चुपके से कुछ मंत्र सीख लेता है। जब इस बात का पता रतिनाथ से पिता जयनाथ को चलता है तो वह फुफकार उठता है वह कहता है। साले की चमड़ी उधेड़ दूंगा, शूद्र है तो वह शूद्र की भांति रहे। इससे साफ है कि इस वर्ग की नजर में निम्न जाति के लोगों को धर्म मंत्र के पठन–पाठन का कोई अधिकार नहीं। इस उपन्यास का नायक रतिनाथ तरकुलता जाते हुए मार्ग में तालाब के किनारे बैठ जल्दी–जल्दी संध्या करता है। इस पर कुल्ली राउत ने रतिनाथ से मुस्कुराकर कहा–लो बाप के गुण सीख न गये। रतिनाथ को कुल्ली राउत की इस बात में सत्य के दर्शन होने लगते हैं और वह विचार करने लगता है कि उच्च जाति के ब्राह्मण और निम्न जाति के कुल्ली राउत की विषम सामाजिक स्थिति का कारण वस्तुतः धर्म और जाति के आरोपित विधि–विधान ही है। रतिनाथ धार्मिक क्रियाओं का प्रदर्शन समाज में ब्राह्मण जाति का वर्चस्व बनाये रखने के लिए करता है। आज ब्राह्मण वर्ग के लिए धर्म के संदर्भ में दिखावापन, बनावटी और वाह्याचार ही रह गये हैं।

'रतिनाथ की चाची' का भोला पंडित द्वारा बाबा के शब्दों में 'ब्रह्मपिशाच' है। वह मन ही मन नियमित रूप से दुर्गा सप्तशती का पारायण करताहै। उनकी जिह्वा नाम में तथा हाथ काम में लगे रहते है। जब कोई दोपहर का निमंत्रण देने आता है तो पंडित जी पाठ छोड़कर उससे पूछ बैठते है डौड डौड उदेडा (कौन–कौन रहेगा) वे अव्यक्र ध्वनियों द्वारा प्रश्न करने में कोई दोष नहीं समझते। 'नई पौध' के भोला पंडित भी ऐसे ही चरित्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे भी भोले–भाले लोगों को धर्म के नाम पर ठगते हैं और लड़कियों को बेचना जैसे जघन्य अपराध करते हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ब्राह्मण और पुरोहित वर्ग धर्म के नाम पर शोषण की अजस्र परम्परा को मजबूत कर रहा है और समाज के नीचे तबके वाले पर अपने वर्चस्व को कायम रखने के लिए प्रत्येक प्रकार के हथकण्ड़ों का खुलकर प्रयोग करता है। नागार्जुन ने इस वर्ग की करतूतों का चित्रण कर जनमत बनाने में सफलता पाई है।

नागार्जुन ने भारतीय समाज में व्याप्त छुआछूत का चित्रण कर समाज के लोगों को बताया है कि मनुष्य रूपी शरीर में राक्षसी प्रवृत्तियां विद्यमान है। वर्ण व्यवस्था ही समाज की आधारशिला रही है परन्तु उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि समाज की सर्वाधिक सेवा करने वाला वर्ग पिसता रहा तथा उसे अछूत समाज बुलाने लगा जिसने अपने परिश्रम के द्वारा समाज को लाभ पहुंचाया उसे ही लोग अछूत कहते हैं। यह प्रजातंत्र के लिए घातक है। कालांतर में उसे सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक अधिकारों से वंचित कर मंदिरों में जाने की मनाही हो गई। परिणाम यह हुआ कि दूसरे धर्मों की

ओर उन दबे–कुचले दलितों, आदिवासियों का ध्यान जाने लगा और उन्होंने हिन्दू धर्म त्याग कर दूसरे धर्मों में जहा अपनत्व मिला उनसे मिलते चले गये।

समाज शास्त्रियों के मतानुसार अछूत भावना या अस्पृश्यता तीन रूढ़िवादी मान्यताओं पर आधारित है। खान–पान, शादी–ब्याह, धार्मिक उत्सव। ये तीनों ही दलितों को सोचने के लिए आज भी बाध्य करता है। खानपान तो दूर की बात है उसे छूने मात्र से हिन्दू सवर्ण अपने से अशुद्ध मानते हैं ऐसी विचारधारा से भला आज का मनुष्य क्यों नहीं प्रतिरोध करेगा। मंदिर प्रवेश के नाम पर आज भी आजादी के इतने वर्षों बाद घोर अत्याचार होते रहें। नागार्जुन ने स्पष्ट लिखा है कि मनुष्य जो खाने से लेकर पहनने और रहने की व्यवस्था करता है परिश्रम द्वारा उसे अछूत क्यों कहेंगे। उन्हीं के परिश्रम से सभी आराम करते हैं और वही अछूत कहलाये यह ठीक नहीं ।

नागार्जुन का लेखन इन्हीं बातों से जुड़ा है। वे गांव के थे और उन्हें नजदीक से इन शोषकों, अत्याचार करने वालो को देखने परखने का मौका मिला उसे उन्होंने अपनी रचनाओं में पिरोया। वे रतिनाथ की चाची में लिखते हैं – कुल्ली राउत अगर यह भी ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ होता तो निश्चय है उसके बदन पर फटे–पुराने कपड़े न होते, हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहन कर इसके बच्चे न पलते। उन्हें स्कूल पाठशाला में जाने का अवसर न मिलता। क्या औरत क्या मर्द इन लोगों का जीवन सवर्ण जाति के लोगों पर निर्भर है। सोचते–सोचते रतिनाथ का माथा चकराने लगा। आज भी गांवों में दुर्दशा से ये ग्रसित है। इसलिए नागार्जुन ने इन ज्वलंत समस्याओं की ओर अपनी लेखनी चलाकर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।

इस तरह हम पाते हैं कि नागार्जुन ने समाज में जात पात, अधर्म को लेकर मनुष्य के अन्दर फैलते जहर को नजदीक से देखकर लिखा है। 'बलचनमा' उपन्यास में भी लेखक ने दिखाया है कि दलित जाति के लोगों द्वारा छुआ हुआ भोजन ब्राह्मण नहीं करते तब लेखक को लगता है कि अनाज, फल, दूध सभी तो ये दलित परिश्रम करके लोगों तक पहुंचाते है फिर कैसे छुआ जाता है घर में आने पर। उन्होंने लिखा है तिरहुतिया बामन बड़े खटकर्मी होते हैं, छोटी जात का छुआ नहीं खायेंगे। तब लगता है स्वयं हल जोते अनाज उपजायें, फल उपजायें, दूध लाऐं आदि लेखक के मन में उठता है। इस तरह हम पाते हैं कि नागार्जुन कबीर जैसे करुणा से भरे हुए थे। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा दलितों की मनोव्यथा का भरपूर चित्रण कर समाज के ऐसे पाखण्डी लोगों को समझाने की कोशिश की है। चाहे उपन्यास हो, कहानी हो या कविता सभी में इन्होंने मानवोचित गरिमा की ओर लोगों का ध्यान दिलाया। उनकी प्रतिबद्धता समाज के प्रति है। इसीलिए उनका लेखक सोद्देश्य रचनाएं लोगों को देता है। इनकी रचनाओं में जनजीवन का यथार्थ चित्रण है। मिथिला की माटी की महक और कला इनकी रचनाओं में साफ दिखाई पड़ता है। इन्होंने 1948 से 1957 तक कई उपन्यासों की रचना की। बलचनमा, वरूण के बेटे, बाबा वटेसरनाथ जैसे प्रयोगधर्मी उपन्यास लिखे। दुखमोचन इनका अंत में सब को आकर्षित करता है। नागार्जुन ने इस काल की रचनाओं में वहां के जनजीवन, सुख–दुःख, आशा–निराशा के चित्रण के साथ अंधविश्वास, कुरीति को दिखाया है। 1960 के बाद 'कुंभीपाक' में व्याप्त वैश्यावृत्ति का चित्रण है। इमरतिया उपन्यास भी प्रभावित करता है। कामेश्वर जैसे विधुर ने सामाजिक क्रान्ति का बीड़ा उठाकर समाज को बदलने की चाहत रखता है।

इस तरह मैं कहना चाहूंगा कि नागार्जुन ने अपनी प्रखर लेखनी द्वारा मानव मूल्यों की वकालत की है। इनका पारो (1946) में भी मिथिला में प्रचलित विवाह की प्रथा की ओर लोगों का ध्यान दिलाना चाहा है। दूल्हा का चुनाव में भ्रष्टाचार होता है। इन्होंने दिखाया है। उपर लिखित उपन्यासों में ग्रामीण जीवन, जमींदारों का शोषण, रीति रिवाज, आस्था, अनास्था, मर्यादा, अमर्यादा, नैतिकता, अनैतिकता, मजदूरों, किसानों की बदहाली, विधवा और दूसरी स्त्रियों का दर्द जीवनानुभव इनकी रचनाओं की कसौटी है। इसी के तहत इन्होंने समाज में फैले भेदभाव को जीवनदायिनी अनुभवों से सींचकर लोगों को जीने की कला दी है। अंत में हम कह सकते हैं कि नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में मानववाद की वकालत कर जाति का विरोध किया है मानववाद को स्थापित करने की पहल की है।

साहित्य यात्रा (नई लहर)
ई.जी.–8, चन्द्रपुरा, बोकारो–828403 (झारखण्ड)

संघर्षता, सामाजिक उत्थान की सत्य घटनाओं का सफरनामा : तत्तापानी

– डॉ. धीरजभाई वणकर

हिन्दी दलित साहित्य में आत्मकथा एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा है। वस्तुतः आत्मकथा के कारण दलित साहित्य की पहचान गहरे रुप में पाठकों को हो रही है। अपना नग्न यथार्थ, संघर्षपूर्ण जीवन उजागर करने वाली विधा आत्मकथा है। हिन्दी में एक दर्जन से अधिक आत्मकथाएँ लिखी गई है और एक के बाद एक आत्मकथा आ रही है। दलित आत्मकथा पारंपरिक आत्मकथाओं से भिन्न होती है। यहाँ एक व्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण दलित समाज का वृत्तांत प्रस्तुत किया जाता है। दलित आत्मकथाओं में एक व्यक्ति को संपूर्ण समाज व्यवस्था से विरोध है। दरअसल दलित आत्मकथाएँ मुख्यतः सामाजिक दस्तावेज है। ये आत्मकथाएँ नई संवेदना, नए अनुभव लेकर अपनी उपस्थिति दर्ज करती है। जिसमें चेतना का स्वर ओत प्रोत है। महात्मा फुले ने जिस गलत एवं त्याज्य परंपराओं के खिलाफ अपने परंपरावादी विचारों की मशाल जलाई थी, उस मशाल की लौ से पूरे भारत के दलितों में नई ऊर्जा एवं चेतना भरने का प्रयास दलितों के मसीहा, महामानव डॉ. अंबेडकर ने किया है। डॉ. बाबा साहब के विचारों से प्रेरणा लेकर दलितों में चेतना आने लगी थी, इसकी शुरुआत आत्मकथा लेखन में दिखाई देती है। भारतीय समाज व्यवस्था में जातीयता एक प्रमुख अंग है। यहाँ व्यक्ति की पहचान जाति से होती है, कर्म से नहीं। जिसमें उँच–नीच, छुआछूत आदि का भेद किया जाता रहा है। दलितों के बीच पनपता अछूतापन इस समाज का सबसे कमजोर पक्ष है जिसे दूर किये बिना दलित समाज की उन्नति नामुमकिन है। प्रतिरोध के बिना शोषण एवं अपमान से मुक्ति नहीं मिल सकती तथा पढ़–लिखकर आगे बढ़ना है, यह उद्देश्य दलित आत्मकथाओं के मूल में छिपा है। दलित आत्मकथाएँ दलित साहित्यिक आंदोलन की रीढ़ की तरह रही है। असल में ये आत्मकथाएँ एक प्रकार से सचेत करनेवाली प्रतिक्रियाओं को सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आधारों पर समझने का संकेत देती है। दलित आत्मकथाएँ एक नये समाज जीवन से परिचित कराती है। जो सदियों से पशु से बदतर जीवन जीता रहा है, उन्हें न बोलने दिया, न पढ़ने दिया। यहाँ तक कि उन्हें मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा। उन्हीं यातनाओं को पूर्ण सत्यता के साथ दलित आत्मकथाकारों ने उजागर किया है।

दरअसल जीवन एक लंबी यात्रा है। इसमें हर मोड़ पर पहुँचकर मनुष्य उन पगडंडियों का अवलोकन करता है, जिनसे होता हुआ वह उस पड़ाव तक पहुँचा है। विगत जीवन की ओर झांकने का और उसकी स्मृतियाँ को सहेजने का मोह मनुष्य को कभी–कभी आत्मवृत्त लिखने को प्रेरित करता है। अतीत की स्मृतियाँ विशेषकर प्रिय लगती है, क्योंकि अतीत का समय चाहे कितने ही कष्ट में क्यों न बीता हो, फिर भी इतने समय बाद भी अतीत के बारे में लिखना अपने आप में एक सुखकर कार्य है। किंतु दलित आत्मकथाकार को आत्मकथा लिखते वक्त पुनः यातनाओं से गुजरना पड़ता है। डॉ. अंबेडकर रत्न, जसराम हरनोटिया मूलतः अंबेडकरवादी है। इसके पहले वे कवि के रुप में, कहानीकार के रुप में, समीक्षक के रुप में ख्याति प्राप्त कर चुके है। "बौद्ध धर्म और संत रविदास'' उनकी चर्चित किताब है। हरनोटिया जी की तत्तापानी आत्मकथा हिन्दी दलित आत्मकथा की अगली कड़ी है। अन्य आत्मकथाकारों की तरह जसराम हरनोटिया की आत्मकथा यथार्थ का दस्तावेज है। आत्मकथाकार ने अपने व्यक्तिगत जीवन में जो अनुभव किया है, जिन लोगों एवं परिस्थितियों से उसका साबका पड़ा है। वह सब उनकी 'जीवन की टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएँ' आत्मकथा में मुखरित हुआ है। लेखक को उपेक्षा, अपमान का सामना बार–बार करना पड़ता है, ऐसे कलुषित लेकिन सच्चे अनुभवों, कष्टों, यातनाओं, प्रताड़नाओं को

सिल–सिलेवार लिखते रहे है। हरनोटिया जी ने कई दलित साहित्यकारों की जीवनियाँ पढ़ी किंतु वे डॉ. अंबेडकर, बाबू जगजीवनराम, महात्मा फूले की जीवनियाँ से अत्यंत प्रभावित हुए फलस्वरुप आत्मकथा लिखने के लिए प्रेरित हुए।

आत्मकथा के आरंभ में हम देखते है कि सांकलपूठी में जन्मे आत्मकथाकार के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनका मकान कच्ची मिट्टी का था। उनका परिवार एक छोटा सा कृषक परिवार था, गाँव में जाट जाति का बाहुल्य था। मनुवादी समाज व्यवस्था ने दलितों का जीना हराम कर दिया था। शिक्षा जैसा पवित्र क्षेत्र भी छुआछूत से नहीं बच पाया था। अन्य दलित आत्मकथाकारों की तरह हरनोटियाजी को भी पाठशाला के कड़वे अनुभव हुए है। पाठशाला में दलित बच्चों को सवर्ण छात्रों से अलग बिठाया जाता तथा पानी भी नहीं पी ने दिया जाता था। "स्कूल में बैठने के लिए अछूत बच्चों को अपनी टाट ले जानी पड़ती थी और कक्षा के अलग किनारे पर बैठना पड़ता था। अध्यापक दलित बच्चों को गलती पर हाथ से चाँटे नहीं मारते थे, बल्कि पैर से अथवा डंडे से ही पीटते थे। जैसा कि अब मैं समझता हूँ कि ये मनुवादी व्यवस्था द्वारा पनपाई गई छुआछूत का ही प्रभाव था। अछूत बालकों को घड़े में रखे पानी पीने का भी अधिकार नहीं था।" (पृ.10) यहाँ हरनोटिया जी ने हिन्दू व्यवस्था की सड़ांध को बेनकाब किया है। लेखक का जीवन संघर्ष सिर्फ उनका नहीं, बल्कि पाठक का भी है। लेखक को शिक्षा के लिए, सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भयंकर संघर्ष करना पड़ा है। आत्मकथाकार पढ़ने में अत्यंत मेघावी थे। सन् 1950–51 में वे पाँचवी कक्षा में पूरे केन्द्र में अव्वल आते है। इंटर कॉलेज में भी प्रथम आते है वहाँ उस समय हजार–ग्यारह सौ विद्यार्थी थे। यह समाचार जाटों को अच्छा नहीं लगा। इसलिए प्रबन्धक समिति द्वारा प्रधानाचार्य के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया गया कि एक चमार (जाटव, दलित) के लडके को प्रथम घोषित करके जाटों की नाक कटवा दी। किंतु प्राचार्य जाति पाँति से पर थे उन्होंने त्यागपत्र देने की तैयारी जताई और कहने लगे "शिक्षा बिकती नहीं, वह विद्यार्थी की कुशाग्रता, स्पर्धा पर आधारित रहेगी।" (पृ.18) दरअसल प्राचार्य दलित हिमायती थे इसलिए हरनोटियाजी उन्हें आज भी नमन करता हूँ ऐसा स्वीकारते है। उस समय ट्यूशन की बीमारी नहीं थी किंतु आज विद्यार्थिओं को ट्यूशन के लिए उकसाते है, फल स्वरुप गरीब बच्चे हताश होकर घर बैठ जाते है। जाति के कारण कई दलित छात्रों का भविष्य अंधकारमय बन जाता है। सवर्ण शिक्षक दलित बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ करते है। मुझे लगता है, आज भी कहीं न कहीं द्रोण जिन्दा है जो दलित बच्चों के भविष्य को बरबाद कर देते है। यह है मनुवादियों का असली चेहरा। हरनोटिया जी ने इसके प्रति चिंता जताई है – "कई बार जातीय प्रकोप के कारण थ्योरी में भी मेघावी विद्यार्थियों के साथ अन्यायपूर्ण पक्षपात किया जाता है। जो विद्यार्थियों के लिए ही नहीं अपितु राष्ट्र के लिए भी घातक सिद्ध होगा? क्योंकि यह जातीय जहर कभी भी लावे की तरह फूटकर राष्ट्रीय अखंडता के लिए खतरा बन सकता है? इसलिए राष्ट्र निर्माताओं को भी इस ओर गंभीरता से सोचने की आवश्यकता है ताकि यह नासूर भविष्य में फोड़ा बनकर राष्ट्रीय एकता–अखंडता के लिए हानिकारक न हो सके।" (पृ.19)

12 मार्च, 1955 के दिन आत्मकथाकार का बाल विवाह श्रीमती केशरलता से हो जाता है। दलित समाज की रस्मों का आत्मकथा में बखूबी वर्णन मिलता है। आजादी के छः दशक के बाद भी दलित आज आजाद नहीं है, उनकी स्थिति में खास सुधार नहीं आया है। गाँवों में दलितों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। शादी जैसे प्रसंगों पर आज भी दलित उत्पीड़न की घटनाएँ घटती है, सवर्ण आतंक मचाते है। ऐसी कई सत्य घटनाओं का प्रस्तुत आत्मकथा में मार्मिक चित्रण मिलता है–'आज भी बहुधा दलित समाज की बारात में दुल्हे को घोड़ी पर नहीं बैठने दिया जाता। बैंड नही बजाने दिया जाता, आये दिन अखबारों में खबरे छपती रहती हैं कि राजस्थान, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश आदि के

गाँवों में बारात की इसलिए पिटाई कर दी गई कि दलितों की बारात में दूल्हा घोडी पर बैठकर जा रहा था अथवा बैंड बाजा बज रहा था अथवा बारात सवर्ण जाति की बस्तियों के बीच से निकल रही थी।'' (पृ. 22) ऐसी ही एक घटना हरियाणा प्रान्त के कालरावास में घटी। जैसे ही दूल्हा घोडी पर बैठकर बारात सहित गाँव में प्रवेश करता है कि सवर्णो बारातियों की घड़ी, गले की चैन, कैमरे आदि छीन लेते है। गौरतलब कि पुलिस भी सवर्णो को सहयोग देती है। इसी तरह की दूसरी घटना पनवाड़ी गाँव में घटी, जहाँ मार–पीट के अलावा लड़की वाले का घर भी जला दिया और अनेकों महिला, पुरुष एवं बच्चें घायल हुए, कई लोगों की हड्डियाँ भी टूट गई। संसद तक हंगामा हुआ, जगजीवन राम के नेतृत्व में रैली निकाली गई जिसमें आत्मकथाकार की अहं भूमिका थी।

आत्मकथाकार बचपन से साहसी, समाज हित चिंतक एवं कर्मठ है। रेलवे में नौकरी की जगह निकली तो लेखक प्रार्थना पत्र दर्ज करते है। ट्रेनिंग के लिए चन्दौसी भेजा गया। बाद में बिकानेर डिवीजन में भेजा जाता है। वहाँ भी जातीय भेदभाव पीछा नहीं छोड़ता क्योंकि पानी पीने का घड़ा सवर्णो एवं दलितों का अलग–अलग था। यह लेखक से बर्दास्त नहीं होता। "लेकिन बीकानेर की व्यवस्था मेरे जैसे युवक को बहुत अखरी और मैंने बर्दास्त न करते हुए पानी के घड़े को अवसर मिलते ही तोड दिया।" (पृ.31) जब ट्रेनिंग का रिजल्ट आया तो अनुसूचित जाति, जनजाति के छात्रों को जान बुझकर फैल कर दिया गया। यह अन्याय लेखक से सहन नहीं होता और वे तत्कालीन रेलमंत्री जगजीवन बाबू के पास अनुत्तीर्ण विद्यार्थीयों की सूची लेकर पहुँचते है। मार्च 1959 को सभी फैल किए गए उम्मीदवारों को पुनः ट्रेनिंग स्कूल चन्दौसी के लिए बुलाया जाता है। विद्यालय अधीक्षक एवं कई इंस्ट्रक्टर्स को सजा दी गई और वहाँ से तबादला भी कर दिया गया। चन्दौसी ट्रेनिंग स्कूल में लेखक झुझारु युवा नेता के रुप में प्रसिद्ध थे। वहाँ पर भोजन कक्ष में सवर्ण लड़के दलितों को आगे नहीं बैठने देते थे इसको बंद कराते है। आखिर 15 मई 1959 के दिन आत्मकथाकार को बुकिंग क्लर्क की नौकरी मिलती है। शाहदरा में वे किराये पर रहने लगे। जहाँ पर उनके मकान के बराबर की उपर मंजिल पर कोई गुंडा रहने आ गया था जिनसे सभी लोग डर रहे थे। छुट्टी के दिन लेखक उन्हें धमकाकर भगा देते है। "मैंने उसके गिरेबान पर हाथ डालकर उसकी बुशर्ट का कालर पकड़कर खींच लिया और जीने से धक्का देकर कहा साले सामान उठा और बाहर निकल जा नहीं तो जान से मार दूंगा। मेरे समाज के लोग ही इस मोहल्ले में रहते हैं। मेरे समाज के बच्चों की देखभाल करना भी हमारा फर्ज है।" (पृ–38) लेखक की बहादुरी एवं निर्भिकता का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है – एक बार उनके बड़े भाई आशाराम बैंक से दो हजार रुपये लेकर बस स्टैंड पर खडे थे तब डकैतों ने रुपये छीन लिए। गिरोह का पता लगाकर अपनी गुप्ती एवं रामपुरी चाकू लेकर वहाँ पहुँच जाते है और पैसे वापस आ जाते है। यह आत्मकथाकार की निर्भयता का प्रमाण है। वे लिखते है – "युवा अवस्था में मुझे कभी किसी ने पीटा हो ऐसा मुझे याद नहीं है। दूसरे जातीय भय की मानसिकता कोसों दूर थी क्योंकि किसान का बेटा होने के कारण भी (Caste inferiority complet) जातीय कमजोरी नहीं थी कि हम अछूत हैं, सवर्णों से कमजोर हैं।" (पृ.44) लेखक के भाई आशाराम सिंचाई विभाग में पंजीकृत ठेकेदार थे। एक बार नहर सफाई का काम मिलता है जिसे ठेकेदार सूरतसिंह रोकना चाहता है। लेखक वहाँ पहुच जाते है और कहते है – "ओ गुर्जर के होश में आकर हाथ उठाओ वरना यहाँ आज तेरी लाश ही उठाकर ले जाएँगे।" (पृ.42) वह मांफी मांगकर चला जाता है।

लेखक आगे इलाहाबाद के अर्ध कुंभी मेले की बात करते है। जहाँ पर अलग–अलग अखाड़े, मठ के संन्यासी उनके डेरे डाल देते है। इलाहाबाद शहर से त्रिवेणी में कई दर्शनीय स्थल है जहाँ रास्ते में लेटे हुए हनुमान की मूर्ति भारत भर में केवल यहाँ देखने को मिलती है। मेले की असलियत का पर्दाफास करते हुए लिखते है। "यहाँ पर पंड़ाओ–पुजारियों की बहुत भीड़ रहती है। किले में भी अनेक प्रकार की मूर्तियाँ है जहाँ

पर दर्शनार्थियों को आडंबरों, चमत्कारों द्वारा अपने जाल में फंसाकर ठगा जाता है। जिसका आधार अंधविश्वास ही कहा जा सकता है।" (पृ.46)

हरनोटिया जी पर भगवान बुद्ध एवं अंबेडकर का काफी प्रभाव रहा है। इसलिए बुद्ध एवं अंबेडकर की राह चले इसमें कतई संदेह नहीं। बाबा साहब की तरह समाज का उत्थान वे चाहते है इसलिए लगातार समाज सेवा के लिए चिंतित दिखाई देते है। नौकरी के साथ–साथ वे बाबा साहब के विचारों को समाजिक एवं राजनीतिक सेवा करने के लिए लघु उद्योग लोहे के कब्जे जो दरवाजों में लगते है का पेशा शुरु करते है। शहर में रहते हुए उन्हें बाबा साहब का साहित्य पढ़ने का अवसर मिला इससे हिन्दू धर्म के प्रति इनके देवी, देवताओं के प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई और बाबा साहब के बताये मार्ग पर चलने लगे–"उसी समय से आज तक हमारे परिवार में, घर में कोई त्यौहार मनाना एवं देवी–देवताओं की पूजा करना सदा–सदा के लिए त्याग दिया गया है। तथा बाबा साहब के द्वारा बताए गए सदमार्ग अर्थात "बुद्ध धर्म में दृढ़ विश्वास हो गया और मानव पथ के अनुयायी बन गए। यहाँ मनुवादियों की ... धर्मान्धता के कारण दलित दीन–हीन रहे, इसे लेखक ने रेखांकित किया है।

लेखक ने आत्मकथा में कदम – कदम पर अपने को अंबेडकरवादी घोषित किया है, जो इसे पढ़ते समय पता चल जाता है। फिर भी आत्मकथा दलित आत्मकथा के सौंदर्य से भरपूर है। भले ही लेखक अपनी किशोरावस्था को पार करके युवा, फिर बुजुर्ग की रेखा को छू रहा हो, किंतु सामाजिक–राजकीय सक्रिय कार्यकर्ता का दायित्व निभाते रहे। हिन्दू धर्म की विषमता भरी जाति त्यागकर लेखक धर्मान्तरण करके बौद्ध धर्म को स्वीकार करते है, इतना ही नहीं अपनी बेटी पुष्पा की शादी बौद्ध भिक्षुओं की उपस्थिति में कराते है। भगवान बुद्ध के 'अप्पो दीपो भवः' को मूल मंत्र मानकर चलते रहे तथा बुद्ध के समता, मैत्री, भाईचारे की ज्योत जलाते रहे। अबेडकर ने 1956 में नागपुर में लाखों अनुयायी सहित बौद्ध धर्म में विधिवत दीक्षा ली यह जानकर तथा 'बुद्ध और उनका धम्म' पुस्तक पढ़ने के बाद लेखक के हिन्दू धर्म के प्रति नफरत बढ़ती गई इसलिए सन् 1964–65 में–"मैंने सभी हिन्दू देवी–देवताओं/भगवानों की मूर्तियों को उठाकर घर से बाहर फेंक दिया, क्योंकि असमानता के कारण आस्था समाप्त हो गयी थी उसके उपरांत मैं और मेरे परिवार द्वारा जन्म से लेकर ब्याह–शादी, सभी शुभ कार्य नामकरण आदि संस्कार बौद्ध धम्मानुसार भिक्षु संघ द्वारा कराये जाते है और मेरा तथा सभी बौद्ध धम्मानुयायियों के परिवार सुखमय बिना किसी भय के जीवन व्यतीत कर रहे है।" (पृ.78) लेखक के पिता ने लेखक को कट्टर अंबेडकरवादी कहा है।

जाटव सुधार समिति शाहदरा के अध्यक्ष के दौरान हरनोटिया जी ने एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाकर हम दलितों पर उपकार किया। उन्होंने श्री जीतसिंह, रघुवीर सिंह, भोपालसिंह, गोविन्द सिंह, प्रभुदयाल, रामसिंह, सीताराम, जाटव हरिचन्द्र आदि के धन सहयोग से बौद्ध धर्म विहार बनाने का निश्चय किया और पांडव रोड पर खाली पड़े प्लोट पर कब्जा कर लेते है किंतु मालिक मना कर देता है, दूसरे खाली प्लोट चार दीवारी बनाकर भगवान बुद्ध की मूर्ति रखते है किंतु दुर्भाग्यवश यह प्लोट भी दिल्ली के एक जन संघी (आज बी.जे.पी.) नेता का निकला, जिसने तुडवा दिया। किंतु लेखक प्लोट का कब्जा नहीं देते और रजिस्ट्री कराकर बौद्ध विहार का शिलान्यास धम्मगुरु 'श्री दलाई लामा' जी द्वारा 1972 में कराया गया जो अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना है। आज तथागत के आशीर्वाद से यह बौद्ध विहार 466 वर्ग गज में फलता–फूलता दृष्टि गोचर हो रहा है। यहाँ आत्मकथाकार का बौद्ध धर्म के प्रति प्रेम उजागर हुआ है।

गौरतलब कि सवर्ण यह नहीं चाहते थे कि दलित पढ़–लिखकर आगे आये। मनुवादियों की साजिश ने सदियों से दलितों को शिक्षा से वंचित रखा। उन्हें जान बुझकर अवसर दिये ही नहीं, वे भली भाँति जानते थे कि अगर दलित पढ़ेंगे तो हमारी गुलामी कौन करेंगा। इतिहास गवाह है कि मजदूरी करने की बात हो,

आजादी की लडाई की बात हो, राष्ट्रप्रेम की बात हो। दलित कतई पीछे नहीं रहे है। किंतु हाशियें के समाज को अधिकारों से वंचित रखा गया। इसी बात की पुष्टि लेखक ने इन शब्दों में की है–"किसी किसान, दलित अथवा शुद्र को अपनी प्रतिभा – प्रस्तुत करने का अवसर ही नहीं मिलता था इसलिए भारत हजारों वर्षों तक परतंत्र रहा।" (पृ.56) बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. अंबेडकर संविधान निर्माण में शामिल न हो इसलिए जवाहरलाल नेहरु, सरदार पटेल चाहते थे कि भारत के संविधान निर्माण की जिम्मेदारी विदेश के किसी प्रवीण व्यक्ति को सौंपी जाय। यह मनुवादियों की चाल थी जिसका भांडा फोड़ने का काम आत्मकथा में लेखक ने किया है। किंतु आखिर गांधी के कहने पर डॉ. अंबेडकर को जिम्मेदारी सौंपी गई।

'जीवन की टेढ़ी मेढ़ी रेखाएँ के लेखक का एक महत्त्वपूर्ण गुण है सफल युनियन नेता। ऑल इंडिया एस.सी./एस.टी. रेल कर्मचारियों के अध्यक्ष के नाते उन्हें पूरा भारत अच्छी तरह से जानता है। कर्मचारियों की भलाई के लिए कई बार धरने पर बैठे और अधिकार दिलाकर रहे किंतु 13 सितंबर 1972 के दिन लेखक के घर पर छापा पड़ा और केस कई वर्षों तक चलता रहा ऐसे समय की हृदय विदारक स्थिति का चित्रण देखिए –"परिवार में अकेला नौकरी में होने के कारण किसी और से अर्थात भाई व रिश्तेदारों की ओर से न कोई सांत्वना मिलती और न कोई आर्थिक सहयोग। कई बार तो मानसिक संतुलन खो जाने योग्य हो जाती। चिंता के कारण गहरी नींद सोने के लिए रात भर करवट बदलता रहता, क्योंकि पत्नि की स्थिति बीमारी के कारण बिगड़ती जा रही थी ऐसी स्थिति में धैर्य बंधाने वाला केवल गुरुजी श्री बिहारी लाल हरित जी के अलावा कोई न था।' (पृ.63) बाबू जगजीवन राम से लेखक का अत्यंत करीब का रिश्ता रहा है। मई–जून 1972 में रेलवे इम्पलाइज एसोसियेशन का एक प्रोग्राम रिवाड़ी में रखा गया था जिसमें बाबू जगजीवन राम को मुख्य अतिथि के रुप में आमंत्रित किया गया था। सभा के बीच में एक सांवले रंग वाला सशक्त नौजवान उठकर जगजीवन राम को चप्पल मारने की हरकत करने वाला था कि लेखक ने मुक्का मारकर खींच लिया। लेखक के कारण एक अपमान जनक घटना होते–होते बच गई–"यदि उस समय सतर्कता न बरती गई होती तो बाबू जी का बहुत बड़ा अपमान होता ऑल इंडिया एस.सी./एस.टी. रेलवे इम्पलाईज का भविष्य तो अंधकार में ही चला जाता। जिसे संपूर्ण समाज का अपमान कहा जा सकता था, क्योंकि चप्पल और बाबू जी के मुख की दूरी मुश्किल से चार छः इंच ही होगी।" (पृ.64)

सन् 1974 में जार्ज फर्णान्डीज ने रेल विभाग में राष्ट्रव्यापी हड़ताल का शंखनाद बजाया। जगह जगह पर तोड़–फोड़ एवं रेलवे लाइनों को उखाड़ फेंकने का कार्य शुरु हो गया। चारों ओर भयंकर अराजकता फैल गई थी। ऐसे समय में एस.सी./एस.टी. रेल कर्मचारीयों ने हडताल का विरोध करके राष्ट्रभक्ति का उत्तम उदाहरण साबित किया। लेखक प्रधानमंत्री इंदिरा गांधीजी से मिलते है और प्रधानमंत्री जी को उक्त घटना से अवगत कराते हुए कहा कि – 'हम दलित राष्ट्र भक्ति में कभी पीछे नहीं रहे लेकिन हमें मिला क्या है?" (पृ.66) हड़ताल की समाप्ति के बाद बूटासिंह को डिप्टी रेल मंत्री बनाया गया इसका पूरा श्रेय आत्मकथाकार को जाता है। यूनियन में उत्तरोत्तर सदस्य बढ़ते गये। लेखक ने आपातकालिन स्थिति का, जगजीवन जी ने कांग्रेस फारडेमोक्रेसी पार्टी बनाई इसको भी रेखांकित किया है। बाबू जगजीवन राम को प्रधानमंत्री न बनने देने के मनुवादियों के षड़यंत्र को भी बेनकाब किया है। जगजीवन राम को उपप्रधानमंत्री, रक्षामंत्री से ही संतोष मानना पड़ा इस बात का लेखक को अत्यंत खेद है।

आत्मकथाकार जमीन से जुड़े हुए है, इसलिए जमीनी हकीकत बताते है कि, किस प्रकार ब्राह्मण लोग दान के नाम पर भोले भाले आदिवासियों मूल निवासियों, किसानों को ठगते है–"इनके भगवान राम अन्याई ने शंबूक महर्षि की गर्दन काटकर अलग कर दी थी। इनके गुरु द्रोणाचार्य ने एकलव्य का दाहिने हाथ का अंगूठा कटवा लिया था क्योंकि धनुर्विद्या में वह एक चुनौती बन चुका था।" (पृ.85) इतना ही नहीं शिक्षा के द्वार भी बंद

कर दिये। लेखक ने जगजीवन बाबू की सुपुत्री मीरा कुमार को 1984 में बिजनौर सीट से लोकसभा चुनाव में विजयी बनाने के लिए अत्यंत महेनत की थी इसे भूलाया नहीं जा सकता। बिहार के कई गाँवों में मीरा कुमारी के लिए वोट मांगने 12 दिन तक घूमते रहे और लोगों को समझाकर उन्हें विजयी बनाया। किसी भी प्रांत में कोई भी आपत्ति खड़ी होती हरनोटिया जी पहुँच जाते और लोगों की मुसीबतें दूर करते। जब 26 जनवरी 2001 को गुजरात में भयानक भूकंप आया जिसमें हजारों की तादाद में लोगों की जानें चली गई तब वे दिल्ली से अहमदाबाद आते है और श्री सोलंकी तथा दामाद पंकज जी, राजेश जी, बेटियाँ रेखा, स्नेह के साथ भुज पहुँच जाते है और कैम्पों में जा–जाकर लोगों को कम्बल बांटे। खेद की बात तो यह है कि राहत कैम्पों में भी जातिगत भेदभाव रखा जाता था – जैसे की सवर्ण लोगों को सामग्री जल्द पहुँच जाती, दलित–मजदूरों को अनदेखा कर दिया जाता था।

आज धर्म परिवर्तन की घटना ज्वलंत समस्या है। ऐसी ही मिनाक्षीपुरम् धर्म परिवर्तन की घटना का जिक्र किया गया है। इस देश में दलितों को तालाबों से, कुओं से पानी लेने की आज्ञा नहीं थी। जब कि कुत्तों एवं पशुओं को उसका पानी पीने एवं वहाँ पर जाने के लिए स्वतंत्रता थी। दरअसल दलितों को कुत्तों एवं पशुओं से नीचा एवं हीन समझा जाता था। यह है ब्राह्मणवादी व्यवस्था की साजिश। लेखक पूर्णतः डॉ. बाबू साहब के विचारों के वाहक एवं प्रतिबद्ध रचनाकार है। बाबू जगजीवन राम की प्रेरणा से 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना 1981 में हुई जिसके अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर को बनाया गया, फिलहाल भी अध्यक्ष वे है। यह अकादमी दलित साहित्य पर संवाद–गोष्ठि के साथ दलित रचनाकारों को विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित करती है, लेखक को 1986 में फैलोशिप देकर सम्मानित किया गया। पुरी के शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ ने 1980 में दलितों के मंदिरों में प्रवेश पर प्रतिबंध लगाने का बयान दिया था। हरनोटिया जी ने विभिन्न प्रान्तों के कार्यकर्ताओं को बुलाकर 11 अगस्त के दिन भूख हड़ताल की जिसमें बहुत लोग पधारे और नारेबाजी की कि – शंकराचार्य के विरुद्ध सख्त और जल्दी से जल्दी कार्यवाही सरकार करे। उसमें सफल हुए।

यह कटु सत्य है कि कहीं भी चोरी होती है तो पहला शक दलित–मजदूरों पर जाता है और उन्हें दोषी ठहराया जाता है। लेखक ने ऐसी ही एक घटना को आत्मकथा में निरुपित किया है। उत्तर रेलवे कालका वर्कशोप में कॉपर स्क्रेप की चोरी होती रहती थी। यह चोरी यूनियन के लोग करते थे तथा कराते थे किंतु इल्जाम एस.सी./एस.टी. एसोसियेशन के अधिकारियों, सदस्यों पर लगाया गया इसके खिलाफ विद्रोह करते हुए लेखक कहते है – 'दलित समाज के लोग देशभक्त होते हैं, वफादार होते हैं, लेकिन चोरी–चकारी, बेईमानी से कोसों दूर रहते है।' (पृ.123) लेखक एवं यूनियन भूख हड़ताल पर उतर जाते है, वाल्मीकि समाज सफाई नहीं करने पर तैयार हो जाते है अंत में पोल खुल जाती है जिसमें आर.पी.एफ के कई सिपाही पकड़े जाते है। आजादी के अड़सठ वर्षों के बाद भी दलित उत्पीड़न, हिजरत की घटनाएँ बरकरार है। पनवाड़ी की दिल को दहला दे ऐसी घटना का आत्मकथा में निरुपण है। पनवाड़ी गाँव में दलित बारात को लूटा गया, बस्ती जलाई गई, दुल्हनों को देने वाला दान–दहेज का सामान दबंगों द्वारा लूट लिया गया था यह जानकर मीरांकुमार के साथ लेखक उस गाँव में पहुँचकर लोगों की आपबीती सुनते है और मीडिया द्वारा जातीय बर्बरता का भंडा फोड़ने का सराहनीय कार्य कराते है। बाबू जगजीवन राम कहा करते थे – "इसलिए ही तो बाबा साहब ने कहा था कि तुम लोग शेर बनो, क्योंकि शेर की कभी बलि नहीं दी जाती है। बलि तो केवल भेड़–बकरियों की हीं दी जाती है।" (पृ.135) मंडल कमीशन ने 1990 में ओ.बी.सी. को नौकरीयों में आरक्षण देने का फैसला किया फलस्वरुप आरक्षण के खिलाफ सवर्णों ने आंदोलन किया किंतु फैसला ओ.बी.सी. के पक्ष अथवा विपक्ष में होना था किंतु फैसला दे दिया गया

अनुसूचित जाति, जन जाति के आरक्षण विरुद्ध। यह है न्यायपालिका का न्याय? जो हमे सोचने के लिए विवश करता है। प्रस्तुत आत्मकथा के अंत में लेखक ने अनु. जाति/जन जाति के साथ घटित अपराधिक घटनाओं की तालिका दी है। हमारे देश में हर दलित को पग–पग पर अपमान के घूंट पीने पडते है – "भारत में दलितों की आबादी लगभग 30 करोड़ से उपर है उनमें शायद ही कोई बिरला व्यक्ति हो जिसे जीवन में अत्याचार और अस्पृश्यता की घटनाओं का किसी न किसी रुप में सामना नहीं करना पड़ा हो?'' (पृ.162)

'तत्तापानी' आत्मकथा हरनोटिया जी की आपबीती का दस्तावेज है। जिसमें अनेक घटनाओं के द्वारा दलित समाज पर हो रहे अत्याचार, अन्याय, जातिगत भेदभाव, मनुवादी साजिश को रेखांकित किया गया है उन्होंने जो भी लिखा है सत्य है और निर्भिकता का परिचायक भी है। इस आत्मकथा के द्वारा उन्हों ने भारतीय समाज की बनावट को तार – तार कर दिया है या भारतीय समाज व्यवस्था की चिंदी – चिंदी बिखेर दी है। वस्तुतः यह आत्मकथा समाज को झकझोर देगी ऐसा मुझे विश्वास है। लेखक मानवीयता से ओतप्रोत है जिसे अपने लिये या दूसरों के लिए अन्याय स्वीकार नहीं है। हरनोटिया जी पर डॉ.बाबा साहब अंबेडकर एवं जग जीवन राम का पूरा प्रभाव पड़ा है। इसलिए उसी की राह पर चले है। यह आत्मकथा दलित युवाओं के लिए प्रेरक बनेगी। दलित आत्मकथा के विकास में प्रस्तुत आत्मकथा एक नया आयाम जोड़ेगी। मैं हरनोटिया जी को इस आत्मकथा के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास है पाठक, साहित्यानुरागी इसका स्वागत करेंगे। भूमिका लिखने का दायित्व उन्होंने मुझे सौंपा इसलिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अध्यक्ष–हिंदी विभाग
बी.डी. कॉलेज लाल दरवाजा,
अहमदाबाद–380001 (गुजरात)
चलभाष – 9638437011

कविताएँ :–

यह देश है सब कौम का

– बी.एल. परमार

यह देश नहीं किसी एक का
यह देश है सब कौम का

सदियों से यहाँ रही एकता
गंगा, जमुनी रही सभ्यता
मत तोड़ो यह ताना–बाना
है रसखान, कबीर का कहना
यह देश नहीं किसी एक का
यह देश है सब कौम का।

हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई
आपस में हैं सब भाई–भाई
नफरत की बू कैसे आई?
भारत माता मन अकुलाई
यह समय नहीं है लड़ने का
यह देश नहीं किसी एक का
यह देश है सब कौम का।

अति दर्द सहा है बंटवारे का
गम भूल सके नहीं अपनों का
अंबार लगा था लाशों का
मंजर मिटा नहीं है आँखों से
धंधा बंद हो, वेर विभाजन का
यह देश नहीं किसी एक का
यह देश है सब कौम का।

पालन करिए राष्ट्र धर्म का
विकास करिए सब वर्गों का
विष मत घोलो जातिवाद का
आयोजन मत करिए दंगों का
खेल बंद हो लाशों पर वोट का
यह देश नहीं किसी एक का
यह देश है सब कौम का।

डर लगता है और विभाजन का
मन साफ नहीं है अतिवादी का
जन–मन बीज बोया भ्रांति का
स्वर मौन हुआ अब शांति का
जब तक है संविधान बाबा का
यह देश नहीं किसी एक का
यह देश है सब कौम का।

गुणगान करो विज्ञान का
मानव एक हुआ संसार का
गला घोंट दो नफरत का
सागर लहराने दो प्यार का
मत बोओ बिरवा बेर का
यह देश नहीं किसी एक का
'बापू' यह देश है सब कौम का।

37, भार्गव कॉलोनी, नागदा जं.
जिला उज्जैन–456335 (म.प्र.)
मोबा. 8770607747

नया इतिहास

– डॉ. धीरज वणकर

ये वे लोग है
जो हमें सदियों से लूटते आ रहे
दिनदहाड़े....

ये वे लोग है
जो धर्म और जातिवाद के नाम पर
बेकसूरों को मारते–पीटते आये
और अपना झण्ड़ा लहराते रहे

ये वे लोग है
जिन्होंने भूमण्डलीकरण के नाम पर
जल जमीन जंगल मुट्ठियों में कैद कर लिये है
और मूलनिवासी दहाड़े मारकर रोते रहे...

ये वे लोग है
जिनकी छद्म चालें अभी बरकरार
कि आप पढ़–लिखकर आगे न बढ़े
पर वे भूल रहे है
हमारी नई पीढ़ी ने क्रान्ति का बिगुल फूँक दिया है
संविधान को घर–घर पहुँचाने
अन्याय, अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने
नहीं डरेंगे....
हम सच के लिए लड़ेंगे
निडर होकर लिखेंगे
सिंह गर्जना करेंगे
और नया इतिहास लिखेंगे।

अध्यक्ष–हिंदी विभाग
बी.डी. कॉलेज लाल दरवाजा,
अहमदाबाद–380001 (गुजरात)
चलभाष – 9638437011

हरदान हर्ष की लघु कविताएँ :–

1. अंकुरण

मौसम आये
अपने परिवेश
पनपता है अंकुर
खोल तोड़कर।

2. अतीत

भटके रास्ते
बिखरे कदम
अतीत के
पीछा करते हैं
दूर तक।

3. अनित्य

पहले चक्र में
जो साथ थे
दूसरे में
उन्हीं से
दो–दो हाथ थे।

4. अज्ञानता

अंधेरे की बाड़
देखती औरों को
आँखें फाड़–फाड़।

5. अमर बेल

सिर माथै चढ़ती
रीढ़विहीन–परमीवी
अमरबेल कि
निशि–दिन
बढ़ता उसका जाल
खा जाता है
हरियल रूख को

6. एक कतरा धूप

जब रूठे हों
अंधेरों के घर
सारे उजाले
तो हेतालु
उदास आँखों की चमक
एक कतरा धूप।

7. कठपुतलियाँ

अचेतन हैं
कठपुतलियाँ
रीढ़विहीन
नाचती हुई
औरों के इशारे।

8. क्रांति

तपते मरू में
झुलस रहे लोगों की
टेढ़ी नज़र
बिमार व्यवस्था के विरुद्ध

9. गुड़िया

दूध पीती बच्ची
बन जाती है माँ
हाथ आते ही
एक गुड़िया।

ए–306, महेश नगर, जयपुर–302015
मोबा. 9785807115

दुनिया के दुश्मन चीन को सबक सिखाना होगा

– डॉ. लक्ष्मी निधि

काल कोरोना आये के, दुनिया किया बेहाल,
सारी दुनिया विलख रही, किस–किस से पूछें हाल।

ऐसा हाल हुआ दुनिया का, सबके सब मजबूर,
ऐसी महामारी फैली कि, अपने–अपनों से दूर।

बड़े–बड़े वैज्ञानिक हैं, पर सब हो गये है फेल,
क्रूर कोरोना खेल रहा है, जब में कैसा खेल

लाचार हुयी है महाशक्तियाँ, सबके सब निरुपाय,
सभी विफल हैं, सभी विकल है, कैसे देश बचाये।

काल कोरोना के कारण ही, लाखों लोग मरे हैं,
सहम गया संसार, विवश दुनिया के लोग डरे हैं।

सब पर फैला जाल काल का, इसको दे कौन सहारा,
इस कसाई चीन को देखो, दुनिया भर को मारा,

हैरत है, फिर भी यह दुनिया, बैठी है चुपचाप,
कब तक भोगेगी यह दुनिया, यह चीनी अभिशाप।

काम–धाम सब बंद हुआ, दुनिया का चक्का जाम,
इतने बम बारूद भरे हैं, हो गये सब बे काम।

यही वक्त है, मिलकर सब, इस चीन को मजा चखायें,
कोरोना के सरताज चीन पर, दुनिया बम बरसाये।

दुनिया के नक्शे से चीन को हमें मिटाना होगा,
दुनिया भर के सभी राष्ट्र को हाथ मिलाना होगा।

हो जाये एक महासमर, संसार बचाना होगा,
दुनिया के दुश्मन चीन को सबक सिखाना होगा।

निधि विहार, 172, न्यूबाराद्वारी, ह्यूम पाईप रोड
(नया कोर्ट रोड), पो. साकची, जमशेदपुर–1 (झारखण्ड)
मोबा. 09934521954

डॉ. मधुर नज्मी की दो ग़ज़लें :–

(1)

हाथों में हुनरवर के मज़मून की दौलत है
अल्फ़ाज के जिस्मों में रुहानी हरारत है।
अंधों की हुकूमत है गूंगों की अदालत है
इस दौरे–सियासत की ये कैसी सियासत है।
बस इनके लिए जीना बस उनके लिये मरना
किस्मत की ये ख़ूबी है वो काम इबादत है।
है बदला हुआ कितना अन्दाज़ ज़माने का
पत्थर की हवेली में शीशे की तिजारत हे।
लोगों ने तरक्की पर कुर्बान किया क्या–क्या
खेती की ज़मीं पर अब मौजूद इमारत है।
सच सुनके शिकन उभरी क्यूँ आप के माथे पर
सच बोलने वालों से क्यूँ आपको दिक्कत है।
कुछ तुम ही 'मधुर' बोलो क्या चाह रहे हैं वो
लोगों के दिलों में क्यूँ पोशीदा उदावत है।

(2)

इस दौरे–कमनज़र की कहानी में क़ैद है
एहसास मेरा खोलते पानी में क़ैद है।
आवाज़ मेरे दिल की बने कैसे शा'इरी
एहसास मेरा लफ़्जो–म'आती में क़ैद है।
पूरा करे वो बच्चों का अरमान किस तरह
मुफगिस की आर्ज़ू तो गेरानी में क़ैद है।
साहिल पे आज ख़ैर से लग जाय मेरी नाव
दरिया की आज तेज़ रवानी में क़ैद है।
उसको न रास आयेगी तहज़ीब शहर की
जो गाँव की हसीन निशानी में क़ैद है।
कैसे ख़बर हो गर्दिश हालात की इन्हें
ये नस्ले–नौ तो जोश–जवानी में क़ैद है।
अश्आर में 'मधुर' के न क्यूँ बू ग़ज़ल की हो
हर लफ़्ज जिसका सादा बयानी में क़ैद है।

महानिदेशक–'काव्यमुखी साहित्य अकादमी'
गोहाना मुहम्मदाबाद–276403, जिला–मऊ (म.प्र.)
मोबा. 9369973494

हाइकू

– डॉ. जयसिंह अलवरी

पत्थर फैंके
उन शरीफों ने भी
दंग समाज।

अभी न आना
तु मेरे शहर में
लगा कर्फ्यू

दिल का हाल
खुलकर लिखना
सारे खत में।

इस भीड़ में
चल संभल कर
लिये हिम्मत।

भूलो भय को
निर्भय बन जियो
मिलेगी राह।

दर्द अपना
न बयां कर किसी को
बाद हँसेंगे।

मधुर वाणी
मान दिलाये सदा
संग गौरव।

घोले मिठास
घर के आँगन में
बच्चों की हंसी।

नहीं जानते
कीमत ईमान की
धन के भुखें।

बता रही है
नींदे कई रातों की
कठोर श्रम।

खत उनके
आये मुद्दत हुई
बिसरे होगे।

राह निहारे
लगे सावन सूना
बिन साजन।

कोशिशें सारी
नाकामयाब हुई
मानके हार।

लगाये गले
मिटा भेदभावों को
रंगों का पर्व।

बहुत देर
बादल बरसेंगे
श्वेत अम्बर।

साथ अपने
उड़ा ले गयी आँधी
दीन की खुशी।

वादे करे है
तो निभाने भी सीखो
भूल बहाने।

दिल किसी का
चटक से टूटा है
शायद कहीं।

प्यार सबका
वो पा गये पल में
हँस–हँसाके।

सम्पादक–साहित्य सरोवर
न्यू दिल्ली हाउस,
बस स्टेण्ड के पास
सिरुगुप्पा–583121,
जिला बल्लारी (कर्नाटक)
मोबा. 09886536450

लघुकथाएँ :–

खौफ

– किशनलाल शर्मा

'दूध वाले के बगल में भी एक मिल गया।'

छोटा भाई रोज सुबह दूध लेने जाता है। वह दूध लेकर आया तब उसने बताया था।

'फिर से कॉलोनी सील हो जायेगी।' उसकी बात सुनकर मेरी पत्नी बोली थी।

कोरोना की वजह से पूरे देश में लॉकडाउन लगने से व्यापार ठप्प हो गया था। आमदनी का जरिया दुकान ही थी। जब लॉकडाउन में दुकानें ही नहीं खुली, तो आमदनी कहाँ से हो।

लाकडाउन में पूरे तीन महीने तक घर में ऐसे कैद होकर रह गये थे। मानो किसी अपराध में जेल में बंद हो। लम्बे अंतराल के बाद अनलाक एक में दुकानें खुलने की अनुमति मिली थी। लेकिन स्थानीय प्रशासन ने सम–विषम के आधार पर दुकानें खोलने की अनुमति दी थी। एक दिन एक तरफ की, दूसरे दिन दूसरे तरफ की, वो भी दस से पांच।

गर्मी अपने तेवर दिखा रही थी। दस बजते–बजते गर्मी पूरे शबाब पर आ जाती थी। शाम पांच बजे बाद ही कुछ राहत मिलती। दुकानें खुलने लगी लेकिन ग्राहक नदारद। बीमारी का डर और गर्मी। जैसे–तैसे अनलाक एक गुजरा। दो भी गुजर गया और तीन में काफी छूट मिली थी। दुकानों का समय नौ से सात बजे कर दिया था। लेकिन राज्य सरकार ने शनिवार–इतवार का लॉकडाउन लाद दिया था।

हम खुश थे कि समय बढ़ने और लगातार पांच दिन दुकानें खुलने पर ग्राहक आने लगेंगे। लेकिन सिर मुड़ाते ही ओले पड़ गये।

मतलब पहले एक बार कॉलोनी सील हो चुकी थी। फिर एक मरीज निकल आया। फिर 14 दिन घर में कैद। कभी भी प्रशासन की टीम आयेगी और कॉलोनी सील कर जायेगी। तभी बेटा आकर बोला, 'दूध वाले के बगल में लड़का है। रात को उसके पेट में दर्द हुआ। रात को कहाँ जाये। आजकल कोई डॉक्टर देख नहीं रहा। इसलिए उसने एम्बुलेंस बुला ली। कोरोना का हल्ला मच गया।

तो उसे कोरोना नहीं है।

नहीं। पेट में दर्द था। रात में अस्पताल में रखा। सुबह छुट्टी कर दी।

और जान में जान आयी थी।

103, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहगंज, आगरा–282010

जीवन से उपजी कहानियां

पुस्तक समीक्षा

विगत पांच दशकों से निरंतर सृजनरत कहानीकार श्री रमेश मनोहरा का नवीन कथा संग्रह ''आदमी और आदमी'' जीवन के संघर्षों और आम आदमी की तकलीफों का प्रतिबिंब है। समाचार पत्र पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होने वाले श्री मनोहरा के इस संग्रह में शामिल अट्ठाईस कहानियां पूर्व में किसी न किसी समाचार पत्र अथवा साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित है।

ये कहानियां सामन्य जनजवीन की उथल–पुथल और परेशानियों के बीच जीने का रास्ता बताती है। ये कहानियां समाज में व्याप्त विषमताओं, ऊँच–नीच और भेदभाव पर भी प्रहार करती है।

'ऊँच–नीच की दीवार' शीर्षक कहानी में उनका एक पात्र कहता है 'न तो मैं उसकी शादी में जाऊंगा और न ही उस दलित लड़की को बहू स्वीकार करूंगा। मेरे जीते जी वह इस घर में कदम नहीं रखेगी। आज से मैं पुत्र दिनेश को आजाद करता हूं।

इसी प्रकार 'दूर के ढोल' शीर्षक वाली कहानी में भी श्री मनोहरा इस विषमता को व्यक्त करते हैं। उनका अपने पात्रों के माध्यम से सामाजिक विषमताओं पर प्रहार हर आदमी के दर्द को व्यक्त करता है। पुस्तक के शीर्षक वाली कहानी 'आदमी और आदमी' में वे आम आदमी के चरित्र और उसके भीतर मौजूद आदमीयत को जीवित रखने का संदेश देती है। आम आदमी चाहे जितना प्रयास कर ले वह अपनी ईमानदारी और सच्चाई को छोड़ नहीं सकता है। इस कहानी के जरिए भी ऐसे ही चरित्र की विशेषता बताई गई है। 'जाना पड़ेगा' शीर्षक वाली कहानी में रमेश मनोहरा ने शासकीय कार्य एवं उसमें आने वाली बाधाओं के साथ पारिवारिक संघर्षों को व्यक्त किया है।

श्री मनोहरा स्वयं एक शासकीय शिक्षक रहे हैं और वे उन सभी संदर्भों को अपनी कहानियों में जोड़ते हैं जो उन्होंने कभी देखा और भोगा होगा।

इस कथा संग्रह को समग्र रूप से एक ऐसा कथा संग्रह निरूपित किया जा सकता है, जो आम जीवन के संघर्षों का एक आईना है। श्री मनोहरा हिन्दी साहित्य की कई विधाओं में पारंगत हैं और लगभग हर विधा में उनकी पुस्तकें भी प्रकाशित हैं। कविता, कहानी, नाटक, लघु कथा अनुवाद की उनकी पुस्तकें उनके गहन अध्ययन और निरंतर सृजन का प्रमाण हैं। श्री रमेश मनोहरा का यह कथा संग्रह कई नए आयामों के साथ प्रस्तुत है। इस संग्रह के माध्यम से श्री मनोहरा अपने रचना संसार को समृद्ध करने में सफल रहे हैं।

समीक्षक – आशीष दशोत्तर
12/2, कोमल नगर, रतलाम (म.प्र.)
मोबा. 9827084966

पुस्तक	–	आदमी और आदमी
विधा	–	कहानी संग्रह
प्रकाशक	–	निखिल पब्लिशर्स, आगरा
पृष्ठ	–	140
मूल्य	–	150/–

आपकी पाती, हमारी थाती

दि. 04.12.2020

प्यारी बेटी तारा जी,

आशीर्वाद।

आश्वस्त मिल रहा है। धन्यवाद।

आप पत्रिका के लिये बहुत परिश्रम कर रही हैं, इसके लिये, शाबाश! बहुत कम हिन्दी पत्रिकाएँ हैं जो हिन्दी भाषा की सच्ची सेवा कर रही हैं आपका नाम उस पहली सफ़ में हैं । मुबारक।

परमात्मा आपको हमें सुखी रखे, आमीन।

आपका धर्म पिता
सरदार पंछी

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

सावित्रीबाई फूले

जन्म दिवस 3 जनवरी

भारत की प्रथम शिक्षिका

प्रथम बालिका विद्यालय खोलने वाली

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिविजन /204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार